अ० भा० दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत

जैन

धर्म शिक्षावली

पांचवां भाग

लेखक :

पं. उग्रसेन जैन

एम० ए०, एल-एल० बी० वकील

रोहतक

अ. भा. दि. जैन परिषद् पब्लिशिंग हाउस

२०४ दरीबा कलां, देहली-६

संशोधित और परिवर्धित संस्करण

८वीं बार १२००

वीर सं० २४९६

मूल्य रु०० १.०

(मुनि विद्यानन्द जी महाराज का प्रिय भजन)

※ श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति ※

तुम से लागी लगन, ले लो अपनी शरण पारस प्यारा,
मेटो-मेटो जी संकट हमारा ॥टेक॥

निश दिन तुमको जपूं, पर से नेहा तजूं जीवन सारा,
तेरे चरणों में बीते हमारा, मेटो-मेटो जी संकट हमारा ॥१॥

अश्वसेन के राज दुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे
सब से नेहा तोड़ा, जग से मुंह को मोड़ा, संयम धारा ॥२॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आए, देवी पद्मावती मंगल गाए,
आश पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ॥३॥

जग के दुख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है
मेटो जामन मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥४॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं,
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥५॥

लेखक के दो शब्द

जैन पाठशालाओं के पठनक्रम में जो पुस्तकें अब तक प्रचलित रही हैं, उनमें या तो ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें केवल धर्म शिक्षा के ही पाठ हैं, या ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें नीति के पाठ और कथा कहानियां ही हैं। भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् ने उक्त दोनों विषयों को एक ही कोर्स में समावेश करने की आवश्यकता समझी और ऐसे कोर्स की तैयारी के लिए मुझसे विशेष अनुरोध किया। परिषद् की आज्ञा पालन तथा शिक्षा प्रचार के भाव को हृदय में रखकर मैंने पांच पुस्तकों में तैयार करने का प्रयास किया है यह कार्य निज ख्याति या लोभादि कषाय के वशीभूत होकर नहीं किया गया है।

जिन-जिन महानुभावों ने इन पुस्तको के सम्बन्ध में अपनी शुभ सम्मति द्वारा सहायता दी है, उनके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं तथा उन पुस्तक रचयिताओं तथा कवियों के भी हम अत्यन्त आभारी हैं कि जिनकी पुस्तकों मे से कुछ गद्य और पद्य पाठ इनमें उद्धृत किये गये हैं।

प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्नावली लगा दी गई है। इससे अध्यापकों को पाठ पढ़ाने में तथा छात्रों को पाठ याद करने में सुविधा रहेगी।

—लेखक

विषय-सूची.

ॐ

श्री वीतरागायनयः

जैन धर्म शिक्षावली

(पांचवां भाग)

पाठ १

प्रार्थना

हे सर्वज्ञ वीर जिन देवा, चरण शरण हम आते हैं।
ज्ञान अनन्त गुणाकर तुमको, चरणन शीश नवाते हैं।१
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोधी नहीं पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके हैं, उन पुरुषों के मन भाता।
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दर्शाया।
यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषि गण ने गाया।३
रत्नत्रय को भूल न जावें, इसलिए उप नयन करें
ब्रह्मचर्य को दृढ़तम पालें, सप्त व्यसन का त्याग करें।४
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें।५।

धर्म मार्ग और वैध मार्ग से, देशोद्धार विचार करें।
आर्ष वचन हम दृढ़तम पालें, सत्सिद्धान्त प्रचार करें।६
श्री जिनधर्म बढ़े दिन दूने, पञ्च आप्त नुति नित्य करें।
सत्संगति को पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरें।७
फलें भाव यह सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं।
'लाल' बालमिल भालवीर के, चरणों में नित धरते हैं।८

प्रश्नावली

१. इस प्रार्थना में किन को नमस्कार किया गया है ?
२. वीर भगवान के कथन की क्या विशेषता है ?
३. हितकारी मार्ग कौन सा है ?
४. इस कविता में हमारे लिए कौन कौन से हितकारी कर्तव्य सुझाये हैं ?
४. पंच आप्त, आर्ष वचन, सत्सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ?

पाठ--२

क्षमाशूर और तपशूर

महाराजा श्रेणिक एक दिन संध्या समय बन में क्रीड़ा करके आ रहे थे, मार्ग में एक ध्यान में लीन निर्ग्रन्थ जैन मुनि यशोधर महाराज को अचल खड़े हुए देखा। राजा का धर्म द्वेष भड़क उठा। शीघ्र

ही उसने पांच सौ शिकारी कुत्ते मुनिराज के ऊपर छोड़ दिये, मुनिराज परम शान्त स्वभावी थे, आत्म ध्यानमें लीन होने के कारण उन्हें यह जरा भी विचार न आया कि यह उपसर्ग कौन कर रहा है।

ज्योंही कुत्ते मुनिराज के पास पहुंचे, वे उनकी ध्यान मई परम शान्त मुद्रा को देखकर खड़े हो गये, उनकी क्रूरता भाग गई। आत्मिक प्रभाव भी खूब होता है, मन्त्र कीलित सर्प शान्त हो जाता है, वैसे ही वे कुत्ते भी शान्त हो गये, मुनिराज की प्रदक्षिणा दे कर उनके चरणों में सिर झुका कर बैठ गये।

महाराज श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा तो मारे क्रोध के वह लाल हो गये, मियान से तलवार सूत कर मुनि को मारने के लिए जा ही रहे थे कि एक भयंकर सर्प फण को उठाये हुवे, फुंकार मारते हुये उनको नजर पड़ा, इसे अशुभ शकुन समझ कर श्रेणिक ने झट से उस सर्प को मार डाला और बड़े क्रूर परिणामों के साथ मरे हुए सर्प को यशोधर मुनिराज के गले में डाल दिया।

मुनिराज तो ध्यानारूढ़ थे, वीतरागी थे, उन्होंने जब अपने गले में सर्प पड़ा जाना तो उन्होंने अपना ध्यान और भी बढ़ा लिया और वैराग्य भावना तथा वैराग्य को बढ़ाने वाली बारह भावनाओं का चिन्तवन

करना शुरू कर दिया ।

इधर राजा श्रेणिक तीन दिन तक इधर उधर अपने काम में लगे रहे, चौथे दिन रात्री के समय जैन धर्म कट्टर श्रद्धानी रानी चेलना के महल में आये तो यह सब कौतूहल रानी से कह सुनाया । यह सुनते ही रानी कांप उठी, उसका हृदय दहल गया, अपने गुरु मुनिराज पर घोर उपसर्ग जान अनेक प्रकार शोक करने लगी, उसकी आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे । इससे महाराजा श्रेणिक का कठोर हृदय भी पसीज गया, कहने लगे, 'प्रिय तू रंचमात्र भी चिन्ता न कर, साधु तो वहां से कभी का चलता बना होगा और उस ने उस सर्प को भी निकाल कर फैंक दिया होगा ।'

श्रेणिक के ऐसे वचन सुन चेलना ने कहा—'महाराज ऐसा कहना आपका भ्रम है, यदि वे मेरे पवित्र निर्ग्रन्थ गुरू हैं तो वे उस स्थान से डिगे नहीं होंगे और ना ही उन्होंने वह सर्प अपने गले से निकाल कर फैंका होगा, सुमेरु पर्वत भले ही चलायमान हो जाये, परन्तु वे धीर वीर तपस्वी साधु उपसर्ग आने पर जरा भी विचलित नहीं होते हैं और समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान निर्मल चित्त के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी

होते हैं। आप विश्वास रखें जो गुरु परम ज्ञानी, परम ध्यानी, दृढ़ वैरागी होंगे वे ही मेरे गुरु हैं। इनसे विपरीत कायर, परिग्रही, वृत तप आदि से शून्य मेरे गुरु नहीं हो सकते। हे नाथ ! आपने बड़ा अनर्थ किया जो वृथा ही अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बनाया।'

राजा को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसी समय रानी चेलना सहित रात्रि को मुनिराज के पास पहुंचे। देखते हैं कि मुनिराज वैसे ही ध्यानारूढ़ खड़े हैं जैसे कि चार दिन पहले खड़े थे, गले में उसी तरह मरा हुआ सर्प है, कीड़ियां शरीर पर चिपटी हुई हैं। यह देखते ही राजा के हृदय में एकदम भक्ति का समुद्र लहरा उठा। मुनिराज को देखते ही चेलना का शरीर भी रोमांचित हो आया, वह शीघ्र ही उनके पास आई, झट से गले से सर्प निकाल कर फेंक दिया और कीड़ियां सब यत्नाचार पूर्वक पोंछकर साफ कर दीं। मुनिराज के शरीर को गर्म पानी से धोकर उस पर चन्दन का लेप कर दिया। रात्री होने के कारण मुनिराज बोले नहीं मौन रहे। राजा और रानी दोनों आनन्द के साथ उनके सामने भूमि पर बैठ गये। सबेरा होते ही फिर रानी ने मुनिराज के चरणों का भक्ति भाव से पूजन किया, उनकी स्तुति की। फिर

राजा और रानी दोनों मुनिराज को नमस्कार करके यथा स्थान बैठ गये।

जब मुनिराज का ध्यान खुला तो उन्होंने दोनों को समान रूप से 'धर्म वृद्धि' आशीर्वाद दिया। मुनि महाराज ने अपनी परम भक्त रानी और द्वेषी राजा में कुछ भी भेद भाव न किया, दोनों को बराबर समझा। इस समय मुनिराज की उत्तम क्षमा को देख कर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुए और अपने मन में बड़ा दुःख मानने लगे। मुनिराज के इस शिष्ट बर्ताव से श्रेणिक मन ही मन विचार करने लगे—हाय! मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने ऐसे घोर तपस्वी योगीश्वर के मारने का प्रयत्न किया, धिक्कार है मेरे जीवन को। मुनिराज अन्तर्यामी थे, ज्ञान से उन्होने राजा के मन की बात जान ली। कहने लगे—'राजन् तुम्हें अपने चित्त में किसी प्रकार का दुःख न मानना चाहिए। जो शुभ अशुभ कर्म किया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है।

मुनिराज के शांतिमय और हितकारी वचनों को सुनकर महाराज श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस प्रकार अनेक प्रकार की धर्म की चर्चा राजा श्रेणिक ने मुनिराज से की। राजा के विचारों ने पलटा खाया, उनके विचार की सीमा बढ़ गई, उन्होंने सोचा कि

विषय-लंपटी, कामी क्रोधी, अविचारी तथा ज्ञान ध्यान से शून्य दंभी साधु कभी सच्चे श्रमण अर्थात् गुरु नहीं हो सकते। इस प्रकार विचार करते उनकी श्रद्धा जैन-धर्म में पूर्ण रूप से हो गई। रानी चेलना सहित महाराज श्रेणिक ने मुनिराज को नमस्कार किया, उनकी बारंबार स्तुति करते हुए राजा और रानी बड़े आनंद के साथ राज महल को चल दिये।

सम्राट् श्रेणिक इस प्रकार महारानी चेलना सहित जैन धर्म को पालते हुए आनन्द पूर्वक अपने राज्य की सुव्यवस्था करते हुए राजगृह नगर में बड़े ठाट-बाट के साथ रहने लगे।

धन्य है! यशोधर मुनिराज की इस उत्कृष्ट उत्तम क्षमा तथा त्याग और सहनशीलता को, वास्तव में वह सच्चे साधु थे, वे यथार्थ क्षमाशूर, तपशूर थे, जैसे कि जैन साधु हुआ करते हैं।

प्रश्नावली

१. राजा श्रेणिक ने श्री यशोधर मुनिराज पर शिकारी कुत्ते क्यों छोड़े?

२. उन कुत्तों ने मुनिराज को कोई हानि पहुंचाई या नहीं—यदि नहीं तो क्यों नहीं?

३. राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले में सर्प क्यों डाला? क्या मुनिराज ने उस सर्प को अपने हाथ से निकाल फेंका! यदि नहीं तो किसने और कब दूर किया?

४. ध्यान खुलने के बाद मुनिराज ने राजा श्रेणिक को क्यों पहले

आशीर्वाद दिया ?

५. आशीर्वाद लेने के बाद राजा श्रेणिक के क्या परिणाम हुए और मुनिराज ने उसको कैसे संबोधा ?

६. निर्ग्रन्थ गुरु के कुछ विशेष लक्षण अपनी परिभाषा में समझाओ ?

७. उत्तम क्षमा से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त देकर बताओ ?

८. मुनिराज के आत्मबल का क्या प्रभाव श्रेणिक पर पड़ा और श्रेणिक में क्या परिवर्तन हुआ ?

९. रानी चेलना के बर्ताव से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ ३

चतुर्गति के दुःख और उनका कारण

तीन लोक में जितने अनन्त जीव हैं सब ही दुःख से डरते हैं और सुख चाहते हैं । अनादि काल से यह संसारी जीव मोह रूपी मदिरा को पीकर बेहोश हो रहा है और अपने शुद्ध चिदानन्द रूपी निज स्वरूप को भूले हुए, चतुर्गति रूप संसार में वृथा भ्रमण करता फिरता है । इस जीव का अनन्त समय तो निगोद में ही एकेन्द्रिय शरीर धारण किये हुए ही चला जाता है । निगोद में बड़ी वेदना सहन करनी पड़ती है । वहाँ की वेदना का अनुभव इसी बात से कर लिया जावे कि एक स्वांस मात्र में वहाँ अठारह बार जन्म मरण होता है ।

निगोद से निकलने पर वह जीव पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय और वनस्पति काय, इन स्थावर पर्यायों को धारण करता है। एकेन्द्रिय जीवों के अकथनिय कष्ट हैं–जरा उन पर गौर कीजिये। मिट्टी को खोदते हैं, रौंदते हैं, जलाते हैं, कूटते हैं, उस पर अग्नि जलाते हैं, धूप की ताप से पृथ्वी कायिक जीव मर जाते हैं। एक चने के दाने बराबर सचित मिट्टी में अनगिनत पृथ्वी कायिक जीव होते हैं–कूटने पीसने रौंदने आदि से इन सबको महान कष्ट होता है, पराधीनपने से सब सहने पड़ते हैं, बचाव वे कर नहीं सकते, कहीं भाग नहीं सकते, असमर्थ हैं। सचित जल को गर्म करने,मसलने, रौंदने आदि से महान कष्ट जल कायिक जीवों को उसीप्रकार होता है जैसे पृथ्वी कायिक जीवों को। जल-कायिक जीव का शरीर भी बहुत छोटा होता है पानी की एक बूंद में अनगिनत जल-कायिक जीव होते हैं। वायु-कायिक जीव भीतादि की टक्करों से, गर्मी के झोंकों से, जल की तीव्र वृष्टि से, पंखों से, हमारे दौड़ने कूदने से टकराकर बड़े कष्ट से मरते हैं। इनका शरीर बहुत सूक्ष्म होता है, एक हवा के झोंके में अनगिनती वायु-कायिक जीव होते हैं।

जलती हुई अग्नि पर पानी डालकर बुझाने से मिट्टी डालकर बुझाने में, तथा लाल तपते हुए लोहे

को धन से पीटते ए, अग्नि-कायिक जीवों को स्पर्श का बहुत बड़ा दुःख होता है । इनका शरीर भी बहुत छोटा होता है । एक अग्नि की उठती लौ में अनगिनत अग्नि कायिक जीव होते हैं ।

वनस्पति दो प्रकार की होती है, एक साधारण और दूसरी प्रत्येक । जिस वनस्पति का शरीर एक हो व उसके स्वामी बहुत से जीव हों जो साथ २ जन्मे व साथ २ मरें । उनको साधारण वनस्पति कहते हैं । जिसका स्वामी एक ही जीव हो उसे प्रत्येक जीव कहते हैं । बहुधा आलू, मूली, गाजर आदि जमीकन्द भूमि में फलने वाली तरकारियाँ साधारण होती हैं । अपनी मर्यादा को प्राप्त पक्की ककड़ी, नारंगी, पक्का आम, अनार, सेव, अमरूद आदि प्रत्येक वनस्पति हैं । इन्हीं वनस्पति कायिक जीवों को बड़ा कष्ट होता है । कोई वृक्षों को काटता है, छीलता है, पत्तों को तोड़ता है, नोचता है, फलों को काटता है, साग को छोंकता है, पकाता है, घास को कतरता है, पशुओं द्वारा या मनुष्यों द्वारा बड़ी निर्दयता के साथ इन वनस्पति कायिक जीवों को घोर कष्ट दिया जाता है । ये पराधीन हुए-२ असमर्थ होने के कारण वेदनाओं को सहते हैं और कष्ट से मरते हैं । ये सब इनके बांधे हुए पाप कर्मों का फल है ।

दो इन्द्रिय प्राणियों को लेकर चौइन्द्रिय प्राणियों तक को विकलत्रय कहते हैं। कीड़े, मकोड़े, पतंगे, चींटी, चींटे आदि पशुओं और मनुष्यों द्वारा तथा हवा, पानी, अग्नि आदि द्वारा घोर कष्ट पाकर मरते हैं। बड़े सबल जन्तु छोटों का शिकार कर अपना खाना बनाते हैं। कितने ही भूख प्यास से, पानी की वर्षा से, बुहारने से, फटकारने से, कपड़ों से घाव पोंछने पर तड़प-तड़प कर मरते हैं। कितने ही गाड़ी, मोटर, रेल आदि द्वारा रोंदे जाने पर मर जाते हैं। भिरड़, मक्खियों के छत्तों को आग से जला कर भस्म कर दिया जाता है मच्छरोंको मारने के नित्य नये २ ढंग निकाले जाते हैं और उनके द्वारा उनको मार दिया जाता है, कितने ही जीव जन्तु मनुष्यों द्वारा उनके अपने दैनिक व्यवहार के निमित्त मार दिये जाते हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यन्चों के दुःख दिनप्रति आप अपनी आँखों से देखते ही हैं। पशु पक्षियों का कोई पालक नहीं उनको पेट भर कर भोजन पान नहीं मिलता—भूख प्यास गर्मी सर्दी की कितनी ही बाधायें उन्हें सहन करनी पड़ती हैं। शिकारी लोग निर्दयता पूर्वक गोली या तीर से उनको मार डालते हैं। मासाहारी पकाकर खाते हैं धर्म के नाम पर कितने ही पशुओं को बलि के नाम से होम कर दिया जाता है। बकरों, मेढ़ों, मुर्गों आदि की कुरबानी की जाती है, मर्यादा से

बाहर बोझ पशुओं पर लादा जाता है, जख्मी बैलों, घोड़ों, खच्चरों, गधों को मार २ कर चलाया जाता है यथा समय उनको चारा पानी भी नहीं दिया जाता गर्मी सर्दी की बाधा उनको अनेक तरह से सहन करनी पड़ती है। कितने ही पक्षियों को तथा पशुओं को पिंजरों में बन्द कर दिया जाता है और उनकी स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया जाता है। मछलियों को जल में से निकाल २ कर जमीन पर पटक दिया जाता है जहाँ तड़प २ कर मर जाती हैं, मनुष्य अपनी खुराक के लिए, अपनी दवाइयों के लिए, अपनी सजावट के लिए, और अपने भोग विलास के लिए कितने ही पशु-पक्षियोंको निर्दयता पूर्वक नित्य प्रति विध्वंश कर डालता है। इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यन्चों को असहनीय दुःख सहने पड़ते हैं।

नरक गति में नार की जीवों को बहुत दिनों तक घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। निरन्तर परस्पर एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। उनकी भूख प्यास की बाधा कभी मिटती ही नहीं भूख इतनी कड़ी होती है कि तीन लोक के अनाज खा लेने पर भी तप्ति नहीं होती। प्यास इतनी होती है कि सारे समुद्रों के जलसे भी शान्त नहीं हो पाती,नरकों की भूमि कर्कश और दुर्गन्धमय होती है हवा छेदक और असह्य होती है। अधिक गर्मी और अधिक शीत की घोर वेदना वहाँ सहन करनी पड़ती

है। नारकियों का शरीर बहुत ही कुरूप और डरावना होता है। उसके देखने मात्र से ग्लानि हो जाती है नरकियों का शरीर वैक्रियिक होता है जो छेदे जाने पर तथा भेदे जाने पर भी पारे की तरह फिर से मिल जाता है। आयु पूरी हुए बिना वे नरक से छूट नहीं सकते। नारकी पंचेन्द्रिय सैनी नपुंसक होते हैं, उनके पाँचों इन्द्रियों के भोगों की तृष्णा होती है, परन्तु उस तृष्णा की शाँति के उपाय तथा साधन न होने से वे निरन्तर क्षोभित और संतापित रहते हैं, उनके परिणाम बड़े खोटे होते हैं, इस प्रकार नाना भाँति के कष्ट नरक गति में इस जीव को सहने पड़ते है।

मनुष्य गति के दुःख तो प्रकट ही है। माता के गर्भ में नौ महिने रहना पड़ता है, वहाँ घोर वेदनायें सहता है, जन्म के समय घोर कष्ट होता है। वह कहने में नहीं आ सकता। शिशु अवस्था में असमर्थ होने के कारण खान-पान यथा समय न मिलने पर बार २ रोना पड़ता है, अज्ञान दशा होती है, अज्ञान के निमित्त थोड़ा सा भी दुःख बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है, किसी के माता पिता मर जाते है तो दुःख, किसी के सन्तान नहीं होती है तो दुःख, सन्तान होकर मर जाती है तो दुःख, सन्तान जीवित रहती है और खोटी हो जाती है तो दुःख, किसी को रोग सताता है, कोई स्त्री के

वियोग में तड़पता, कोई दरिद्र से दुःखी है । किसी को इष्ट वियोग का दुःख है तो कोई अनिष्ट संयोग के मारे बिलखता है । किसी को शारीरिक पीड़ा है तो किसी को मानसिक चिन्ता सताती है । मनुष्य गति में बड़ा दुःख तृष्णा का है । पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगों की तृष्णा सताती रहती है । इच्छित पदार्थ यदि नहीं मिलतें हैं तो बड़ा कष्ट होता है । "दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णा वश धनवान" चाह की दाह में बड़े २ चक्रवर्ती भी जला करते हैं । बुढ़ापे में शरीर शिथिल हो जाता है, इंद्रियाँ काम नहीं करती, लोलुपता बढ़ जाती है पराधीन हो जाता है-वृद्ध अवस्था अर्द्ध मतक समान है । इस प्रकार मनुष्य गति में इस जीव को बड़े घोर दुःख सहन करने पड़ते हैं ।

देव गति में यद्यपि शारीरिक कष्ट नहीं है, परन्तु मानसिक कष्ट बहुत भारी है । देवों में छोटी बड़ी पदवियाँ होती हैं, देवों की विभूति संपदा कम ज्यादा होती है । नीची पदवी वाले देव ऊंचों को देखकर मन में बड़ा ईर्ष्या भाव रखते हैं, उनको देखकर जला करते हैं जब किसी देवी का मरण हो जाता है तब इष्ट वियोग का दुःख होता है, जब किसी देव का मरण काल आता है तो वियोग का बड़ा दुःख होता है । अधिक भोग भोगते हुए भी उनकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है कभी

अकाम निर्जरा के कारण भवनत्रिक (भवन वासी देव, ज्योतिषी देव, व्यन्तर देव) तीन प्रकार के देवों में भी जन्म ले लेता है तो वहाँ विषय चाह की अग्नि में जला करता है और यदि कल्पवासी देव भी हो जाता है तो वहाँ भी सम्यक्दर्शन बिना दुःख पाता है। वहाँ से चलकर फिर स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय हो जाता है।

इस प्रकार इस संसारी जीव ने पाँच प्रकार के परिवर्तन (द्रव्य-परिवर्तन, क्षेत्र-परिवर्तन, काल-परिवर्तन भव-परिवर्तन और भाव-परिवर्तन) अनन्त बार किये हैं इस सब संसार भ्रमण का मूल कारण मिथ्यादर्शन है।

प्रश्नावली

१. चारों गतियों के नाम बताओ?
२. जीव की निगोद में कैसी वेदना होती है?
३. निगोद से निकल कर यह जीव किस पर्याय में जाता है?
४. पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय और पवनकाय के जीवों के दुःख का वर्णन करो।
५. वनस्पति कितने प्रकार की होती है? प्रत्येक वनस्पति किसे कहते है और साधारण वनस्पति किसे कहते है दृष्टान्त देकर बताओ?
६. वनस्पतिकाय के जीवों के दुःखों का वर्णन करो।
७. विकलत्रय किन्हें कहते है?
८. तिर्यंच गति के दुःखों का वर्णन करो?
९. नरक गति के दुःखों का वर्णन करो?
१०. नारकियों का शरीर कैसा होता है?
११. मनुष्य गति के दुःखों का वर्णन करो?

१२. देवगति में जीव को क्या-क्या दुःख होते हैं ?

१३. भवनत्रिक से तुम क्या समझते हो ?

१४. पंच परिवर्तन के नाम बताओ ?

१५ संसार परिभ्रमण का मूल कारण क्या है ?

१७. नीचे लिखे का अर्थ बताओ—

(ज) "अर्द्ध मृतक सम वृद्धापनो"

(आ) "दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान ।"

मिथ्यात्व

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र के कारण इस चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है । हर एक गति में इसे नाना प्रकार के दुःख और कष्ट भोगने पड़ते हैं । जन्म मरण के अनेक दुःख सहता है । जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष,इन सात तत्वों का इसे यथार्थ श्रद्धान नहीं होता है । इनके स्वरूप का और उल्टा श्रद्धान कर लेना ही मिथ्यादर्शन है–आत्मा का स्वरूप जानना होता है आत्मा जड़रूप नहीं है, यह चैतन्य स्वरूप है । यह पुद्गल आकाश,धर्म,अधर्म और काल इन पांचों द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है, यह पाँचों जड़रूप हैं, अज्ञानी जीव आत्मा को ऐसा न मान अपने शरीर को ही आत्मा समझता है । जाति में, कुल में, शरीर में, धन में, धाम में, नगर में, कुटुम्ब में अपना

आपा माना करता है। वह माना करता है मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं गरीब हूं, मैं राजा हूं, यह रुपया पैसा मेरा है, यह मेरा घर है, यह मेरी गाय भैंस हैं, यह हाथी घोड़ा, मोटर मेरी हैं, मै बड़ा हूँ,मैं छोटा हूँ, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, अथवा मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूं, मैं कुरूप हूं,मैं सुन्दर हूं, मै मूर्ख हूं, मैं चतुर हूं, शरीर के नाश होने को अपना मरण और शरीरके जन्म को अपना जन्म माना करता है। राग,द्वेष,क्रोध, मान,माया,लोभ जो नित प्रति अपनी आंखों के सामने देखते २ जीवों को दुःख देते हैं उन्हीं की सेवा करते हुवे सुख मानता है। मिथ्यादृष्टि पहले बांधे हुवे शुभ कर्मों के फल भोगने में रुचि और अशुभ कर्मों केभोगने में अरुचि करता है क्योंकि उसे आत्म स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है, अपने आत्मा के हित करने वाले कारणों ज्ञान और वैराग्य को अपने लिये दुखदाई समझता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्मा की शक्ति को खो कर अपनी इच्छाओं को नहीं रोकता है और न ही चिन्ता रहित आनन्द स्वरूप अविनाशी मोक्ष के सुख को ढूंढता है। ऐसी उल्टी श्रद्धा सहित जो कुछ ज्ञान होता है उसी को कष्ट देने वाला ज्ञान या मिथ्याज्ञान समझना चाहिये।

मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ २ पांचों

इन्द्रियों के विषय में प्रवर्त्ति करना मिथ्याचारित्र है । इस प्रकार मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र जो स्वभाव से ही अनादि काल से जीवों के बने रहते हैं, इनको अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं ।

खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्म की सेवा करना मिथ्या दर्शन है ।

खोटे गुरु–जो गुरु पाखंडी, वेषधारी, इन्द्रिय विषय लंपटी, धूर्त हैं, अज्ञानी हैं, परिग्रही हैं, आरंभी हैं, जो अपने को पूज्य धर्मात्मा मान अन्य भोले भाले जीवों को ठगते हैं, उनसे अपनी पूजा कराते हैं, जो हिंसा में प्रवृत्ति कराने वाला उपदेश देते हैं, जो कुकथा कहते हैं, रागी, द्वेषी तथा दंभी हैं, वे कुगुरु हैं । संसार समुद्र में तैरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं ।

खोटे देव–जो देव रागी द्वेषी हैं, अल्पज्ञ हैं, जो भूख-प्यास, काम-क्रोधादि सहित है, जो भय सहित है, शस्त्रादिक को ग्रहण करते हैं । जिनके द्वेष, चिन्ता, खेदादिक निरंतर बने रहते हैं, कामी, रागी होने के कारण निरंतर पराधीन रहते हैं । जो अल्पज्ञ हैं, वे सच्चे देव नहीं हैं, खोटे देव हैं । जो मूर्ख लोग ऐसे देवों की सेवा करते हैं, वे संसारसमुद्र से पार नहीं हो पाते ।

खोटा धर्म–जिन २ क्रियाओं के करने में राग-द्वेष पैदा हो, अपने और दूसरों के परिणामों में संक्लेश होवे जो साक्षात् त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा का कारण होवे, उन सबको खोटा धर्म समझना चाहिये। हिंसा-मय चारित्र का पालना खोटा धर्म है। जो ऐसे कुधर्म का सेवन करते हैं, दुख पाते हैं।

इस प्रकार ऊपर बताये हुए खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्मका श्रद्धान करना गृहीत मिथ्यादर्शन है।

खोटे शास्त्र–जो शास्त्र एकान्त पक्ष से दूषित हैं अल्पज्ञ के कहे हुए हैं, रागी, द्वेषी, अभिमानी, लोभी, दंभी, कपटी विषयालंपटियों के रचे हुए हैं वे खोटे शास्त्र हैं। जिन शास्त्रों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है, जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप न बताकर आडंबर रूप लोगों के चित्त को खुश करने वाली असत्य विकथाओं का कहने वाला हो, जिसमें प्राणियों की हिंसारूप उपदेश दिया गया है, ऐसे खोटे शास्त्रों का पढ़ना दुख देने वाला मिथ्याज्ञान है। ये ही गृहीत मिथ्याज्ञान है।

अपनी नामवरी, रुपये पैसे के लोभ और अपनी पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा रखते हुए अनेक प्रकार से अपने शरीर को तपाना, जीव और शरीर के भेद को न जानकर अन्य अधर्मरूप क्रियाएं करके शरीर को

क्षीण करना तथा इसी प्रकार की और अनेक क्रियाएं कराना करना गृहीत मिथ्या चारित्र है।

इस प्रकार कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को सच्चा मानना मिथ्यादर्शन है। संसार बढ़ाने वाले खोटे शास्त्रों का पढ़ना मिथ्याज्ञान है, ज्ञान बिना शरीर का नाश करने वाले हिंसामयी तप का करना मिथ्याचारित्र है। यह गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप समझना चाहिये।

संसार भ्रमण का मूल कारण मिथ्यात्व है। मिथ्या-दृष्टि जीव पापों में फंसा रहता है, आत्म-हित साधन में प्रमादी रहता है, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय करता है। मन,वचन, काय को क्षोभित रखता है, संसार में अनेक कष्ट भोगता है। ऐसा जान मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

मिथ्यात्व के पाँच भेद

पहले बता चुके हैं कि जीवादितत्वों के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान न होकर और २ रूप उल्टा श्रद्धान होनेको मिथ्यात्व कहते हैं मिथ्यात्व के कारण संसारी जीव में अनेक तरंग उठा करती हैं अर्थात् जीव के शान्त स्वभाव का नाश होता है। इसी कारण यह मिथ्यात्व कर्मों की उत्पत्ति का कारण है।

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—एकान्त, विप-रीत, विनय, संशय और अज्ञान।

एकान्त मिथ्यात्व–वस्तु में अनेक गुण होते हैं जैसे दूध पीना शरीर को पुष्ट बनाता है, परन्तु बहुत से रोगों में हानिकारक भी है–इस हेतु से दूध लाभदायक भी है और हानिकारक भी। एक मनुष्य जो २० वर्ष का है वह १० वर्ष के बालक से बड़ा और ५० वर्ष के मनुष्य से छोटा है। इस हेतु वह बड़ा भी है और छोटा भी। इसी प्रकार वस्तु में अनेक गुण होते हैं, परन्तु संसार के अल्पज्ञ जीव वस्तु के एक ही गुण को लेकर उसी के अनुसार उस वस्तु का श्रद्धान कर लेते हैं। इसका नाम एकान्त मिथ्यात्व है। श्री वीतराग अरहन्त भगवान हमारा न कुछ बिगाड़ते हैं न कुछ संवारते हैं, क्योंकि वह तो राग द्वेष रहित वीतराग हैं, परन्तु उनका ध्यान करने से तथा उनकी वीतरागता का चिंतवन करने से हमारे परिणामों में वीतरागता आती है जिससे पाप कर्मों का क्षय होता है। इस हेतु वह हमारे दुख को दूर करने वाले हैं, परन्तु उनको साक्षात् दुःख को दूर करने वाला कर्ता परमेश्वर मानना एकान्त मिथ्यात्व है। स्नानादि शरीर शुद्धि और शुचि क्रिया से मन की मलीनता दूर करने में संसारी जीवों को सहायता मिलती है परन्तु स्नान करने या शुचि क्रिया ही कर लेने में धर्म मानना और मन की शुद्धि का कुछ भी विचार न करना एकान्त मिथ्यात्व है। इस प्रकार वस्तु में अनेक स्वभाव

होते हुए उनमें से किसी एक रूप ही वस्तु का स्वभाव होने को हठ पकड़ना 'एकान्त मिथ्यात्व' है।

विनय मिथ्यात्व–सत्य और असत्य की परीक्षा न करके, हरेक तत्व को ठीक मानकर, भोलेपन से विनय करना विनय मिथ्यात्व है। जैसे पूजने योग्य वीतराग सर्वज्ञ देव है, अल्पज्ञ रागी द्वेषी देव पूजने योग्य नहीं हैं तो भी सरलभाव से, विवेक बिना दोनों की बराबर भक्ति करना विनय मिथ्यात्व है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि बिना गुणों के विचारे सबस ही देव कुदेवों की समान विनय करना और सारे ही मत मतान्तरों को एक ही मान कर उनकी भक्ति करना 'विनय मिथ्यात्व' है।

विपरीत मिथ्यात्व:–जिसमें कभी धर्म हो ही नहीं सकता, उसको धर्म मान लेना 'विपरीत मिथ्यात्व' है, जैसे हिंसा में धर्म मानना।

संशय मिथ्यात्व:–सुतत्व और कुतत्व का निर्णय न करके संशय में पड़ा रहना, कौन ठीक है कौन ठीक नहीं है ऐसा एक तरफ निश्चय न करके भ्रम में पड़े रहना संशय मिथ्यात्व है। जैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र-रूप मोक्षमार्ग है या नहीं।

अज्ञान मिथ्यात्व–तत्वों के जानने की चेष्टा न करके देखा देखी किसी भी तत्व को मान लेना 'अज्ञान

'मिथ्यात्व' है हिताहित की परीक्षा रहित श्रद्धान को 'अज्ञान मिथ्यात्व' कहते हैं जैसे—वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवों को अपने हिताहित का कुछ भी ज्ञानन हीं है। बहुत से मनुष्य अपने सांसारिक कामों में ऐसे फंसे रहते हैं कि उन्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और धर्म की ओर से ऐसे ही अज्ञानी रहते हैं जैसे पशु या वृक्ष आदि, यह 'अज्ञान मिथ्यात्व' है।

यह मिथ्यात्व जीव का महान शत्रु है इसी से यह संसारी जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। हम रोज देखते हैं कि संसारी जीव मिथ्यात्व के वश होकर रागी द्वेषी देवों की भक्ति पूजा करते है। अविवेकी, अभक्ष्य भक्षण करने वाले, ढोंगी, दंभी, मानी कुलिंगियों की तथा उनके मार्ग की प्रशंसा करते है। अपने कार्य की सिद्धि के लिए देवी-देवताओ की बोलत कबूलत करते है। ऐसा विचार करते हैं कि हमारे अमुक प्रयोजन की सिद्धि हो तो छत्र चढ़ावे, दीपक जलावे, बच्चों के बाल चोटी उतरावे, यह सब तीव्र मिथ्यात्व है। ग्रहण में सूतक मानना, संक्रांति मानना, ग्रहों का दान देकर अपने को सुख शांति का होना मानना, बालू रेत का ढेर लगाकर पूजना, कुवाँ पूजना, पीपल पूजना, शीतला मसानी आदि का पूजना, उनको धोक देना इत्यादि ये सब मिथ्यात्व हैं। इनमें से किसी भी

मिथ्यादर्शन में फंसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यक्दर्शन को नहीं प्राप्त कर सकता है–सच्चे धर्म का श्रद्धान उसको नहीं हो पाता, मनुष्य जन्म को वृथा ही खो बैठता है। मिथ्यात्व के कारण प्राणी विषय भोगों की लालसा का मारा रात दिन विषय की तृप्ति के फंदे में फंसा रहता है, नाना प्रकार की अन्याय और अनीति करता है अभक्ष्य भोजन करता है योग्य अयोग्य के विचार से रहित हो जाता है, हिंसादि पाप को करते हुए सकुचाता नहीं। अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले विवेकी पुरुषों को चाहिए कि मिथ्यात्व का त्याग करें और सम्यक्दर्शन रूपी अमत का पान करें। यह सच है:–– मिथ्यादृष्टि सदा दुःखी––और सम्यग्दृष्टि सदा सुखी।

प्रश्नावली

१. मिथ्यात्व कितने प्रकार का होता है ? उसके नाम भी बताओ ?
२. एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते है ? दृष्टान्त देकर समझाओ।
३. विनय मिथ्यात्व क्या होता है ? दृष्टान्त सहित बताओ।
४. संशय मिथ्यात्व से आप क्या समझते है ? दृष्टान्त भी दो।
५. विपरीत मिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व से तुम क्या समझते हो ? कोई दृष्टान्त भी दो।
६. मिथ्यात्व से क्या हानियां जीव को होती है ?
७. 'मिथ्यादृष्टि सदा दु.खी, सम्यक्दृष्टि सदा सुखी' इसका अर्थ अपनी परिभाषा में समझाओ।

जीवन की सार्थकता

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। हमारे अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान का कल्याणकारी विहार हो रहा था। उनका समवशरण राजगृह के पास विपुलाचल पर्वत पर आया था। सम्राट् श्रेणिक भगवान के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। जिनेन्द्र भगवान का शुभागमन सुनकर उन्होंने नगर में मंगल-भेरी दिलवाई और नगर निवासियों, सामन्तों तथा मंत्रियों से वेष्ठित, प्रभु की वन्दना तथा पूजा के लिए बन की ओर चल दिये। समवशरण में पहुंचकर भगवान के दर्शन वन्दना करके वहां बैठे और अवसर पाकर भगवान महावीर से बड़ी विनय पूर्वक प्रश्न किया– नाथ ? आपने महान त्याग और आदर्श अनुष्ठान से मनुष्य जीवन की सार्थकता का उपाय बता दिया है। आप पुरुषसिंह हैं, महावीर हैं, निर्ग्रन्थ मार्ग के सर्वश्रेष्ठ पथिक हैं, परन्तु नाथ ? हम जैसे भीरु और कायर गृहस्थ इतने साहसी नहीं कि एकदम मुनि अथवा आर्यिका हो जावें। अतएव नाथ ? हमें भी मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए कोई सुगम मार्ग बताइये।

महाराज श्रेणिक के पूछने पर भगवान की दिव्य

ध्वनि हुई जिसे गौतम गणधर महाराज ने ग्रहण किया और संसार के अन्य जीवों के कल्याण के निमित्त द्वादशांग रूप में सूत्रबद्ध प्रगट किया। गुरु परम्परा से भगवान की वह दिव्य वाणी आज भी मिल रही है। श्री गौतम गणधर देव ने महाराज श्रेणिक के प्रश्न करने पर नीचे लिखी कथा कही।

'भद्रपुर में जिनचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही दानवीर और प्रतापी था। जिनदत्ता और जिनमती नाम की उसकी दो रानियाँ थी। जिनदत्ता के सूरदत्त और जिनमती के जिनदत्त नाम के पुत्र हुए।

सूरदत्त बलवान और शस्त्र-विद्या में विशेष निपुण था। जिनदत्त अश्व-विद्या खूब जानता था, परन्तु भोगों से विरक्त था। जिनचन्द्र सुख से शासन कर रहा था कि अचानक म्लेच्छों ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा ने जिनदत्त को म्लेच्छों से मोर्चा लेने के लिए भेजा, परन्तु म्लेच्छों ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया। वह लौटकर भद्रपुर आया।

इस पर सूरदत्त म्लेच्छों को मार भगाने के लिए गया। वह पराक्रमी शूरवीर था। म्लेच्छ उसके सामने टिक नहीं सके वह हार गये। सूरदत्त विजयी होकर भद्रपुर लौटा। राजा और प्रजा ने उसका सम्मान

किया। राजा ने उसे युवराज बनाया। सब लोग कहने लगे कि सूरदत्त के समान कोई शूरवीर नहीं है।

विवेकी जिनदत्त से चुप न रहा गया। यह सुनकर वह कहने लगा कि 'म्लेच्छों के जीतने में क्या बहादुरी है। वही मनुष्य सच्चा शूरवीर है जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मद और काम-रूपी छह शत्रुओं को जीतता है, घोर परीषहों को समभाव से सहता है, वही महाशीलवान पुरुष पुंगव अपनी आत्मा का हित करने के लिए तत्पर रहता है और लोक का कल्याण करता है वह यथार्थ में शूर है।' जिनदत्त का कहना सूरदत्त के मन भा गया। वह विरागी हो गया और श्रीधर मुनिराज के पास जाकर उसने जिनदीक्षा ले ली।

सूरदत्त ने जिस प्रकार संग्राम में अपने भुजबल और वीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की, वैसे ही उन्होंने धर्म-मार्ग में घोर तप तपा और मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया—अपने आत्म कल्याण के लिए उन्होंने सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना की और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाया।

श्रेणिक ! मनुष्य जन्म पाने का यही सुफल है। दुनियां के धन्धे में सफलता पाना गृहस्थ का कर्तव्य है अवश्य, परन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्म-कल्याण करने में होती है। अपनी आत्म शक्ति के

अनुसार सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रय धर्म की आराधना करनी चाहिए । यह जरूरी नहीं कि मुनिपद धारण करके ही उसकी आराधना करो, घर में रहकर भी धर्म की आराधना हो सकती है, परन्तु विरक्त परिणाम होना चाहिए । अपने हित और अहित को पहिचानने की दृष्टि होनी चाहिए । बिना विवेक के न मुनि और न गृहस्थ अपना कल्याण कर सकता है । भरत महाराज घर में ही वैरागी थे । धन और ऐश्वर्य में अन्धे नहीं हुए थे । जीवन का ध्येय केवल रुपया कमाना नहीं है—यह नाशवान है—छाया है । छाया अपने आप पीछे चलेगी, आप केवल धर्म की आराधना कीजिए । कर्मवीर भी बनिये और धर्मवीर भी, सत्य है :—

'जे कम्मे सूरा – ते धम्मे सूरा'

दो०—धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्म-पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ।।

(बा० कामताप्रसाद जैन)

प्रश्नावली

१. दिव्यध्वनि द्वादशांग और विहार से तुम क्या समझते हो ?
२. सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भाषा में सुनाओ ।
३. सच्चा धर्मवीर कौन है ?
४. इस कथा से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?
५. 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' इसका अर्थ समझाओ ।
६. अन्तिम दोहा सुनाओ और उसका अर्थ बताओ ।
७. मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है ?

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तत्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन बताया है—इन सात तत्वों का स्वरूप चौथे भाग में आप पढ़ चुके हैं, प्रसंग वश यहां संक्षेप से कुछ बता देना अनुचित न होगा।

(१) जीवतत्व—चेतना लक्षण जीव है—जीव तीन प्रकार के होते हैं बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

(अ) बहिरात्मा—मिथ्यादृष्टि जीव जो शरीर आत्मा को एक ही गिनते हैं, जो तत्वों के स्वरूप को जानते ही नहीं, जिनकी इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, जो विषय चाह की अग्नि में रात दिन जलते रहते हैं, जो अपनी आत्म शक्ति को खो बैठते हैं और जो मोक्ष के अविनाशी अविकारी सुख की खोज के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करते 'बहिरात्मा' हैं।

(आ) अन्तरात्मा—जो आत्मा को जानते हैं, आपापर के भेद को जानते हैं और समझते हैं ऐसे भेद ज्ञानी सम्यग्दृष्टि 'अन्तरात्मा' कहलाते हैं। ये अन्तरात्मा भी तीन प्रकार के होते हैं—

(क) उत्तम अन्तरात्मा—अन्तरंग और बहिरंग के २४

प्रकार के परिग्रह से रहित शुद्ध परिणामी आत्मध्यानी मुनि उत्तम अन्तरात्मा है ।

(ख) मध्यम अन्तरात्मा—देशव्रती गृहस्थ और छठे गुण स्थानवर्ती मुनि अन्तरात्मा है ।

(ग) जघन्य अन्तरात्मा—व्रत रहित चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है ।

(इ) परमात्मा—अत्यन्त विशुद्ध आत्मा को परमात्मा कहते हैं—परमात्मा के दो भेद हैं:—एक सकल परमातमा, दूसरे निकल परमात्मा, जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, जो लोकालोक को देखने वाले हैं ऐसे सर्वज्ञ, वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा या अरहन्त' कहते हैं ।

आत्मा का हित सुख पाने में है, सुख उसे कहते हैं जिसमें आकुलता अर्थात् किसी प्रकार की भी कोई चिन्ता न हो आकुलता मोक्ष में नहीं है । संसार में तो सब ही जगह आकुलता पाई जाती है । इसलिए सुख के चाहने वालों को मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहिए । मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप है । इन तीनों के स्वरूप का विचार दो तरह से करना चाहिए एक तो निश्चय रत्नत्रय रूप से, यह तो ठीक-ठीक सच्चा स्वरूप है, दूसरा

व्यवहार रूप से यह व्यवहार मोक्ष मार्ग निश्चय मोक्ष मार्ग के पाने का कारण है।

पर अर्थात् अन्य द्रव्यों से आत्मा को जुदा जानकर शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप में श्रद्धान करना 'निश्चय सम्यक्दर्शन' है।

शुद्धआत्मा के स्वरूप का विशेष ज्ञान होना 'निश्चय सम्यक्ज्ञान' है।

शुद्ध आत्मा के स्वभाव में रमण करना अर्थात् एक चित्त हो लीन तथा तन्मय हो जाना 'निश्चय सम्यक्चारित्र' है।

निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करने में व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है। जिनके द्वारा निश्चय रत्नत्रय का लाभ हो उनको व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के श्रद्धान को या इनमें पुण्य और पाप को मिलाकर नौ पदार्थों के यथार्थ श्रद्धान को 'व्यवहार सम्यग्दर्शन' कहते हैं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के श्रद्धान को भी सम्यग्दर्शन कहते हैं, जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए आगम के ज्ञान को 'व्यवहार सम्यक्ज्ञान' कहते हैं और अशुभ मार्ग की निवृत्ति तथा शुभ मार्ग की प्रवृत्ति 'व्यवहार सम्यक्चारित्र' है।

अब यहाँ पर पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं :—

जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट द्रव्य-कर्म, राग द्वेष क्रोधादि भाव-कर्म और शरीरादि नो कर्म इन तीनों प्रकार के कर्मों का नाश कर दिया है, ज्ञान ही जिनका शरीर है जो लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, जो अनन्त काल तक आत्मा के स्वाधीन, निराकुल सुख का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं—ऐसे परमात्माओं को 'कृतकृत्य' निकल परमात्मा या सिद्ध कहते हैं।

इनमें से वहिरात्मपने का त्याग कर अन्तरात्मा बन सदैव दोनों प्रकार के परमात्मा अरहंत और सिद्ध की सेवा करना योग्य है। इससे ही मोक्षपद की प्राप्ति हो सकेगी।

(२) अजीवतत्व—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पांच चेतना रहित अजीव द्रव्य हैं। इनमें से पुद्गल मूर्तिक है क्योंकि इसमें स्पर्श, रस, वर्ण, गंध गुण पाये जाते हैं, बाकी चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

धर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल को चलने में उदासीन रूप से सहकारी है। 'अधर्म-द्रव्य, चलते हुए जीव और पुद्गल के ठहरने में उदासीनरूप से सहकारी होता है।

आकाश द्रव्य—इसमें जीवादि द्रव्यों को अवकाश देने की योग्यता होती है इसके दो भेद हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश-धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव

जिस हद तक आकाश में पाये जाते हैं उसे 'लोकाकाश' कहते हैं, उससे बाह्य को 'अलोकाकाश' कहते हैं।

कालद्रव्य—इसके दो भेद हैं—एक निश्चय काल और दूसरा व्यवहार काल।

निश्चयकाल का कार्य सब द्रव्यों में परिवर्तन होने में सहायता करने का है।

समय, घड़ी, पहर, दिन महीना और वर्ष आदि को 'व्यवहार-काल' कहते हैं।

इन छहों द्रव्यों में से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश यह पांच तो बहुप्रदेशी होने के कारण 'पंचास्तिकाय कहलाते हैं।' काल के एक ही प्रदेश होता है इस कारण वह काय नहीं है।

(३) आस्रवतत्त्व—कर्म वर्गणाओं के खिचकर आत्मा के पास आने को तथा कर्मों के आने के कारण को आस्रव कहते हैं—मिथ्यात्व, अवरति प्रमाद, योग, कषाय कर्म आस्रव के प्रबल कारण हैं।

(४) बंधतत्व—कर्मों के आत्मा के साथ बंधन के कारण को तथा आये हुये कर्मों के आत्मा के साथ बंध जाने को बन्ध तत्व कहते हैं।

(५) संवरतत्व कर्मों के आने के कारण को तथा आते हुये कर्मों के रुक जाने को संवर कहते हैं।

(६) निर्जरातत्व–कर्मों के झड़ने के कारण को तथा कर्मों के झड़ने को निर्जरा कहते हैं।

(७) मोक्षतत्व सर्व कर्मों से छूट जाने के कारण को व आत्मा के कर्मों से प्रथक हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह जगत जीव और अजीव अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों का समुदाय है। पुद्गलों में सूक्ष्म-जातिकी कर्म वर्गणायें हैं या कर्म-स्कन्ध हैं, उन्हीं के संयोग से आत्मा अशुद्ध है। आस्त्रव और बन्ध तत्व अशुद्धता के कारण को बताते हैं। संवर अशुद्धता को रोकने का व निर्जरा अशुद्धता के दूर होने का उपाय बताते हैं। मोक्ष बन्ध रहित तथा शुद्ध अवस्था का नाम है। ये साथ तत्व बड़े उपयोगी हैं। इनके स्वरूप को ठीक ठीक जाने बिना आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता—इन्हीं का सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यक्दर्शन है। इन ही के मनन से निश्चय सम्यक्-दर्शन होता है। इसलिये ये निश्चय सम्यक्दर्शन के होने में बाहिरी निमित्त कारण हैं। अंतरंग निमित्त कारण अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मिथ्यात्व कर्म का उपशम होना या दबना है।

इन्हीं सातों तत्वों में पाप पुण्य दोनों को और मिला देने से दो पदार्थ हो जाते हैं।

ऊपर सात तत्वों का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्

दर्शन बताया गया है । निर्दोष बाधारहित आगम के उपदेश बिना सप्ततत्वों का श्रद्धान कैसे हो सकता है ? और निर्दोष आप्त अर्थात् देव के बिना सच्चा आगम कैसे प्रकट हो सकता है ? सच्चे देव के कहे हुये तथा सच्चे आगम के द्वारा प्रकट धर्ममार्ग पर साक्षात आप चलकर आत्म कल्याण का मार्ग असली तौर पर सच्चे निर्ग्रन्थ गुरु बिना और कौन दिखा सकता है ? इसी कारण सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान भी व्यवहार सम्यक् दर्शन है । देव, शास्त्र, गुरु की सहायता से ही पदार्थों का ज्ञान होता है । व्यहार सम्यकत्व का सेवन होता है ।

सच्चा देव वही है जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो । इन तीनों गुणों के बिना देवपना हो नहीं सकता । जो देव आप ही दोषी हैं वे दूसरे जीवों को कैसे निराकुल, सुखी और निर्दोष बना सकते हैं । यह लक्षण अरहंत और सिद्ध परमात्मा में ही मिलते हैं । 'अरहंत भगवान' जीवन-मुक्त परमात्मा है । सर्व कर्म-मल रहित निकल परमात्मा 'सिद्ध भगवान' हैं, ये ही हमारे आदर्श हैं, नमूना हैं, जिनके समान हमें होना है । इसलिये इन्हीं को पूजनीय देव मानकर इन्हीं की भक्ति, पूजा, उपासना, वन्दन, गुणानुवाद करना चाहिए ।

 और उसे भुला देने से बढ़कर दूसरी कोई बुराई नहीं है।

सच्चा शास्त्र वही है जिसका किसी वादी प्रतिवादी द्वारा खण्डन न किया जा सके। जो सच्चे देव अरहंत परमेष्टी का कहा हुआ होवे. जिसमें पूर्वा पर विरोध न हो, जो वस्तु के स्वभाव का यथार्थ उपदेश करने वाला हो, प्राणीमात्र का हितकारी हो, मिथ्या अर्थात् झूठे मार्ग का खण्डन करने वाला हो, ऐसे ही शास्त्र में अज्ञान और कषाय के मेटने का उपदेश मिलता है, ऐसे ही शास्त्र की भक्ति करने से, स्वाध्याय करने से, सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। ऐसे ही शास्त्र अविनाशी. अविकार, परमानन्द का आस्वादन कराने का एकमात्र अमोघ उपाय है।

सच्चे गुरु वही हैं जो सच्चे देव के कहे हुए सच्चे शास्त्र के अनुसार चलकर महाव्रतों का पालन करते हुये अज्ञान और कषायों के मेटने का साधन करते हैं। सच्चे गुरु के विषयों की आशा नहीं होती। वे आरम्भ और परिग्रह रहित होते हैं, ज्ञान, ध्यान और तप में लवलीन होते हैं. सच्चे गुरु तारण-तरण होते हैं, जो तत्त्व लाखों प्रयत्न करने पर भी समझ में न आवे, गुरु महाराज उसको बात की बात में सुगमता के साथ समझा देते हैं, गुरु की शरण में बैठने से आचरण की शुद्धि होती है। उनकी शांत मुद्रा तथा उनके हितोपदेश का अन्य जीवों पर बड़ा ही असर पड़ता है। इस

लिये गुरु महाराज की संगति करके ज्ञान का लाभ उठाना चाहिये. उनकी सेवा, वैय्यावृत्य करके अपने को सफल मानना चाहिये।

इस प्रकार इन सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्-दर्शन का कारण है। सम्यक्दर्शन का पालन आठ दोष, आठ मद, तीन मूढ़ता और छह अनायतन ऐसे पच्चीस दोष न लगाकर निर्मलता से करना चाहिये।

सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायक सम्यक्त्व। मिथ्यात्व का उपशम होकर सम्यक्त्व होना उपशम सम्यक्त्व है और मिथ्यात्व क्षय होने से सम्यक्त्व का होना क्षायक सम्यक्त्व है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में यद्यपि सम्यक्त्व होता है, परन्तु मिथ्यात्व की झलक होने के कारण मल सहित होता है, इसको वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व में चल, मल और अगाढ़ ये तीन प्रकार के दोष होते हैं। सम्यक्-दर्शन मोक्ष-रूपी महल में चढ़ने की पहली सीढ़ी है, इसके बिना ज्ञान और चरित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते। जैसे भी बने शास्त्र स्वाध्याय द्वारा अथवा सत्संगति द्वारा सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का तथा

 धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है ।

सात तत्वों का स्वरूप समझकर सम्यक्दर्शन रूपी रत्न से अपने आत्मा को पवित्र करना चाहिये ।

(छप्पय छन्द)

छहों द्रव्य नव तत्व, भेद जाके सब जानें ।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानें ।
संयम सहित सुसाधु, होंय निरग्रन्थ, विरागी ।
मति अविरोधी ग्रंथ, नाहिं माने परत्यागी ।
वर केवल भाषित धर्म धर, गुण थानक बूझें मरम ।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिनधर्म ।

प्रश्नावली

१. सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं ?
२. व्यवहार सम्यक् दर्शन से तुम क्या समझते हो ?
३. तत्व कितने हैं ? उनके नाम बताओ---प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ ।
४. आत्मा कितने प्रकार की होती है ?
५, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप समझाओ ।
६. परमात्मा के कितने भेद हैं और कौन-कौन से ?
७. व्यवहार सम्यक्दर्शन और निश्चय सम्यक्दर्शन में क्या भेद है ?
८. व्यवहार सम्यक् ज्ञान और निश्चय सम्यक् ज्ञान में क्या अन्तर है ?

बाकी श्रौर बाते कुछ नही ।

९. व्यवहार सम्यक् चारित्र श्रौर निश्चय सम्यक् चारित्र में क्या श्रन्तर है ?

१०. व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्ष में क्या अन्तर है ?

११. द्रव्य कितने है ? उनके नाम बताश्रो श्रौर संक्षेप मे प्रत्येक का स्वरूप समझाश्रो ।

१२. व्यवहार श्रौर निश्चय काल मे क्या अन्तर है ?

१३. सच्चा देव किसे कहते है ?

१४. सच्चे गुरु के लक्षण बताश्रो ।

१५. सच्चा शास्त्र किसे कहते है ?

१६. सम्यक्त्व कितने प्रकार का होता है ?

१७ उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व श्रौर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व मे तुम क्या समझते हो ?

१८. चल, मल श्रौर श्रगाढ दोष क्या होते है ?

१९. द्रव्य कितने है, उनके नाम बताश्रो । प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।

२०. श्रस्तिकाय किसे कहते है ? कौन-कौन द्रव्य श्रस्तिकाय है और कौन-कौन नही ?

सम्यक्त्व के श्राठ श्रंग

जैसे शरीर के श्राठ श्रंग होते हैं—मस्तक, पेट, पीठ, दो भुजायें, दो टांगें, एक कमर । यदि इनको जुदा-जुदा कर दिया जाये तो शरीर नहीं रहता, इसी तरह सम्यक्त्व के श्राठ श्रंग होते हैं, यदि ये न हों तो सम्यक्त्व पूर्ण नहीं होता ।

(१) निःशंकित अंग—जिन भगवान के कहे वचनों में संशय न करना निशंकित अंग है। जिन सात तत्वों की श्रद्धा करके सम्यक्त्वी हुआ है उन पर कभी शंका नहीं लाना—जो जानने योग्य बातें अपनी समझ में नहीं आवें और जिनागम में बताई गई हैं, उन पर सम्यक्त्वी अश्रद्धान नहीं करता, उनको विशेष ज्ञानी से पूछने और समझने का उद्यम करता है। सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है, वह अपने श्रद्धान में सदैव दृढ़ और निश्चल रहता है। सात भय ये हैं—इस लोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, अकस्मात भय और मरण भय।

(२) निःकांक्षित अंग—धर्म सेवन करके संसार के इंद्रिय जनित सुखों की इच्छा नहीं करना। सम्यक दृष्टि सांसारिक सुख को और भोगों को पराधीन, दुःख का मूल, आकुलता पैदा करने वाला, तृष्णा को बढ़ाने वाला और पाप-कर्म वा बन्ध करने वाला समझता है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग—मुनिराज या अन्य धर्मात्मा के शरीर को मैला देखकर घृणा नहीं करना। सम्यक्दृष्टि जीव किसी जीवको दुखी, दरिद्री, अपवित्र, कुचेष्टावान आदिक अवस्था में देख कर उससे ग्लानि नहीं करता है। वह समझता है यह सब कर्म जनित है,

संसार की अपवित्र और घिनावनी वस्तु को देखकर घृणा नहीं करता। यही विचारता है कि इन वस्तुओं का स्वभाव ही ऐसा है, इनसे घृणा कैसी ? गंदे मलीन को देखकर उनसे घृणा नहीं करता, उनको साफ रहने के लिए प्रेरणा करता है, उनके लिए साफ रहने के साधन जुटा देता है। इस अंग के पालन करने वाला सम्यक्-दृष्टि अपने गुणों की डींग नहीं मारता, अपनी प्रशंसा नहीं करता, दूसरों को हीन नहीं समझता, विचारता है कि संसारी जीवों में जो भेद हैं वे सब कर्म जनित हैं। वास्तव में सब ही आत्माएँ समान हैं, उनमें कोई भेद द्रव्य दृष्टि से नहीं है। दुखी, दरिद्र, रोगी प्राणियों पर दया-भाव रख उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करता है। रोगियों की सेवा करता है, उनके मल मूत्र, कफ आदि के उठाने में ग्लानि नहीं करता है। उनके क्लेश मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। जिसके निर्विचिकित्सा अंग है, उसी के दया है, उसी के अहिंसा है, उसी के वात्सल्य है, और उसी के वैयावृत्य होता है।

(४) अमूढ़-दृष्टि अंग—खोटे खरे तत्व की पहचान कर मूढ़ता की ओर नहीं जाना अमूढ़-दृष्टि अंग है। सम्यक्दृष्टि वे सोचे, बिना समझे, बिना

परीक्षा किये अन्धे की तरह लोगों की देखा देखी, मिथ्यात्व के बढ़ने वाली निरर्थक क्रियाओं को धर्म मानकर नहीं पालता है। प्रत्येक धर्म क्रिया को ज्ञान-पूर्वक विचार कर ही करता है, जो रत्नत्रय के साधक कार्य हैं, उन्हीं को करता है। मूढ़ बुद्धि को बिलकुल त्याग देता है। लोभ से, भय से, आशा से तथा लज्जा से किसी प्रकार भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, तथा उनके मानने वालों को भक्ति भाव से प्रणाम नहीं करता, उनकी विनय और प्रशंसा नहीं करता।

(५) उपगूहन अंग—पराये दोषों को ढांकना उपगूहन है। यदि किसी समय में किसी धर्मात्मा से उसके अज्ञान से या उसकी कमजोरी से कोई दोष बन जाता है तो सम्यक्दृष्टि इस ख्याल से कि यदि यह दोष प्रगट हो गया तो धर्म की निंदा होगी, धर्मात्माओं को लोग दूषण लगावेंगे प्रभु के निर्दोष मार्ग की निंदा होगी, धर्म से सच्ची प्रीति रखते हुए धर्म को अपवाद से बचाने के लिए उसके दोष को छिपाता है। ऐसी दशा में करुणा बुद्धि धारण कर उसका यथायोग्य सुधार करना ही अपना कर्तव्य समझता है।

(६) स्थितिकरण अंग—किसी समय में यदि कोई धर्मात्मा खोटी संगति से, रोग के कारण से, दरिद्रता से, मिथ्या उपदेश से या अन्य किसी कारण

से धर्म गिरता हो तो धर्म प्रेमी सम्यक्‌दृष्टि उसको जैसा भी बने धर्म में स्थिर कर देता है, यह स्थिति-करण अंग है। इस अंग का पालक अपने आत्मा को सदा धर्म में स्थिर रहने की प्रेरणा करता है।

(७) वात्सल्य अंग—जैसे गऊ अपने बच्चे से प्रीति करती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति करना वात्सल्य अंग है। जिसके अहिंसा से प्रीति होती है, जो सत्य और सत्यवादियों का उपासक है, जिसको सच्चे धर्म से प्रेम है, जो धन और पर-स्त्री की लालसा नहीं रखता है। उसी के वात्सल्य होता है। जिसके हृदय में धर्म और धर्मात्माओं के प्रति अनुराग है जो त्यागी, तपस्वी,सन्यासी धर्मात्माओं के साथ बड़े आदर पूर्वक व्यवहार करता है उसके वात्सल्य होता है। इस अंग का पालन करने वाला सम्यक्‌दृष्टि अन्य धर्म वालों से द्वेष नहीं करता है। उन पर भी दया-भाव रखता है और उनके प्रति मध्यस्थ रहता है। किसी प्रकार भी उससे शत्रुता का भाव नहीं करता है। उनका बिगाड़ नहीं चाहता, उनके धर्म स्थान,देवालय, मठ आदि को नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहता। विचारता है कि जिसको जैसा सम्यक् या मिथ्या उपदेश मिलता है वैसी ही उसकी प्रवृत्ति हुआ करती है। समस्त प्राणियों के लिए उसके मैत्री-भाव होता है उसको किसी से

वैरभाव नहीं होता। गुणवानों के लिए उसके दिल में हर्ष होता है, दीन दुखी जीवों के लिए उसके हृदय में करुणा होती है और विरोधियों की ओर वह मध्यस्थ रहता है। इस अंग का धारक, धर्म और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम भाव रखते हुए उनके दुखों को मिटाने का भरसक प्रयत्न और उद्यम किया करता है।

प्रभावना अंग—जिस प्रकार भी बने जैनधर्म की उन्नति करना और ऐसे कार्य करना कि जिसके करने से संसार के सब जीवों पर धर्म का प्रभाव पड़े।

जैन धर्म की प्रभावना दान देने से, घोर दुर्द्धर तपश्चरण करने से, शील संयम पालने से, निर्लोभता से, विनय से, हर्ष तथा उत्साह पूर्वक जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक पूजन करने से तथा तत्वों का प्रचार करने से, साधारण जनता में से ज्ञान प्रचार द्वारा अज्ञान अन्धकार को मिटा देने से, परोपकार से बढ़ती है, सम्यक्-दृष्टि इन सब कारणों को जुटाने के लिए भरसक यत्न किया करता है, वह चाहता है कि जैनियों के निर्मल आचरण, दान, तप, शील, भावना, विनय, क्षमा, दया, अहिंसा, भक्ति, श्रद्धान उनकी विद्वता, निष्कपटता, निर्भीकता, मैत्रीभाव, सहनशीलता, करुणा और परोपकार भाव इत्यादि गुणों को देखकर दूसरे धर्म वाले भी प्रशंसा करें और कह उठें कि धन्य है

बाकी और सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र है।

इनके धर्म को, इनके आचरण को, इनके स्वार्थत्याग को, प्राण जाते हुए भी यह अपने नियम व्रत को भंग नहीं करते, इनका जीवन अनुकरणीय है। इसी का नाम प्रभावना है। इस अंग का पालक धर्म की उन्नति करने का निरंतर प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य समझता है, जिस प्रकार भी बने और भी लोग सत्य धर्म से प्रभावित होकर सत्य को ग्रहण करे ऐसा उद्यम सदैव करता कराता रहता है।

इन आठों अंगों के समुदाय का नाम ही सम्यक् दर्शन है। अंगी अंगों से जुदा नहीं हुआ करता, अंगों के समूह की एकता ही तो अंगी है। इन गुणों से उल्टे शंकादिक आठ दोष हैं, जो २५ दोषों में गर्भित हैं। उन्हें दूर करके सम्यक्-दर्शन को निर्मल बनाना चाहिये।

(सवैया ३१)

धर्म में न संशय, शुभ कर्म फल की न इच्छा,
अशुभ को देख न गिलानी आवे चित्त में।
साँचो दृष्टि राखे काहू प्राणी का न दोष आंखे,
चंचलता भानि थिति ठाणे बोध चित्त में॥
प्यार निजरूप से उच्छाह की तरंग उठे,
यह आठों अंग जब जागे समकित में।
ताहि समकित को धरे सो समकितवंत,
वेही मोक्ष पावे और न आवे फिर इत में॥

प्रश्नावली

१. सम्यक्त्व के कितने अंग होते है ? नाम बताओ।
२. निःशंकित अंग किसे कहते हैं।
३. निःकांक्षित से आप क्या समझते हैं ?
४. निर्विचिकित्सा अंग से आप क्या समझते है ?
५. अमूढदृष्टि तथा उपगूहन अंग का स्वरूप समझाओ।
६. स्थितिकरण से आप क्या समझते हो ?
७. वात्सल्य अंग पर एक छोटा सा लेख लिखो।
८. प्रभावना किसे कहते है ? सच्ची प्रभावना काहे मे है।
९. सच्ची प्रभावना के कुछ उपाय सुनाओ ?
१०. सम्यक्त्व के २५ दूषण कौन से है ? उनके नाम बताओ।

समयक्दृष्टि निर्भय होता है

सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है। जिसको तत्वों में पूर्ण श्रद्धान होता है और संसार के सर्व प्रकार के दुःख सुख को कर्म जनित जानता है और सांसारिक दुःख सुख को अपने से परे समझता है तो उसको भय ही किस बात का होवे, उसको भय तो तब हो जब पर पदार्थों को अपना समझता हो, वह तो अपने श्रद्धान में अडिग होता है। एक सच्चे वीर योद्धा की तरह वह कठिनाइयों को चीरता हुआ अपने ध्येय की ओर आगे बढ़ता चला जाता है अपने निश्चित मार्ग से

पीछे हटता नहीं। भय सात प्रकार का होता है।

इस लोक का भय—सम्यक्दृष्टि के इस लोक का कोई भी भय नहीं होता। वह धन-संपदा, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन-धान्य राज्य आदि को अपने से बिलकुल जुदा जानता और देखता है—वह समझता है कि कर्म के उदय से इनका संयोग है, और कर्म के उदय से ही इनका वियोग भी अवश्य होगा। जो जन्मता है उसका नाश भी अवश्य होता है। वह तो अपने को समझता है मैं ज्ञान स्वरूप हूं, अविनाशी हूँ, अजर अमर हूँ, शुद्ध चेतना स्वभाव का धारक हूँ। उसका ऐसा दृढ़ श्रद्धान है, वह अपने निश्चित मार्ग पर एक सच्चे योद्धा की तरह डटा रहता है।

परलोक-भय—सम्यक्दृष्टि के इस बात का भय नहीं होता कि मरने के बाद मेरा क्या बनेगा, मैं कहां किस क्षेत्र में जन्म लूँगा, दुःखी होऊँगा या सुखी—वह अपने किए हुए कर्मों का फल भोगने से घबराता नहीं, वह विषयों का लोलुपी नहीं होता। अपने कर्मोंदय पर संतोष रखता हुआ परलोक की चिन्ताओं का जरा सा भी भय अपने दिल में नहीं मानता।

मरण-भय—सम्यक्दृष्टि मृत्यु से डरता नहीं वह तो मरण को चोला बदलने के समान जानता है, वह आत्मा को अजर अमर मानता है शरीर जड़ है अवश्य

एक रोज यह शरीर मुझसे छूटेगा, शरीर मुझसे भिन्न है, मैं चैतन्य अविनाशी हूँ । मृत्यु का मुकाबला समता भाव के साथ करने के लिए एक वीर योद्धा की तरह हर समय तैयार रहता है । मौत के डर के मारे वह अपने नियत मार्ग से नहीं डिगता ।

वेदना-भय—रोग हो जाने पर सम्यक्दृष्टि घबराता नहीं, उससे डरता नहीं—समताभाव के साथ कर्म की निर्जरा का हेतु जान रोग की वेदना को सहन करता है—यथायोग्य इलाज करता कराता है । वह निरोग रहने का उपाय करता है, अपना खान-पान, आहार-विहार, निद्रा आदि क्रियाओं को बड़ी सावधानता से करता है । वह शरीर को आत्मा से भिन्न समझता है, विचारता है रोग तो शरीर में है, आत्मा में नहीं—यह रोग कर्म का भोग है, यदि ज्ञानपूर्वक शाँति के साथ सहूँगा तो मैं सहूँगा संक्लेशित होने से आगे के लिए और नया कर्म बंध जाएगा । ऐसा जान वह वेदना से डरता नहीं, परन्तु निरोग होने के लिए यथोचित उपाय अवश्य करता है ।

अनरक्षा-भय— सम्यक्दृष्टि के ऐसा विचार नहीं होता कि मेरा रक्षक संसार में कौन है । यदि वह अकेला कहीं परदेश में जंगल में या किसी और स्थान में होता है, कोई आपत्ति आ जाती है तो वह घबराता

नहीं, डरता नहीं। उसे अपने आत्मा के अजर अमर पने पर भरोसा होता है। उस समय में वह विचारता है मेरी आत्मा ही अपनी शरण आप है, न इसका कोई रक्षक है और न कोई इसका घातक है—व्यवहार में अरहन्त, सिद्ध, साधु तथा जिन भगवान का धर्म ही एक मात्र शरण है। निर्भय हुआ आपत्ति को धर्म भावना के साथ दढ़ता पूर्वक झेलता है।

अगुप्ति भय—सम्यक् दृष्टि के ऐसा भय नहीं आता कि हमारा माल खजाना लुट गया तो क्या होगा? चोर डाकू लक्ष्मी लूट कर ले गये तो क्या बनेगा? वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध करता है, पूरा पूरा प्रयत्न करता है, परन्तु रहता निश्चित है। विचारता है कि हमारा कर्तव्य तो केवल उपाय करना है, यदि प्रबन्ध करते २ भी असाता वेदनीय कर्म के उदय से हानि होती है तो होवे। अधीर काहे को होना? यदि पुण्य का उदय है तो हमारा प्रयत्न अवश्य सफल होगा, हानि क्यों होगी। पुण्य का उदय है तो लक्ष्मी बनी रहेगी, चोर डाकू वगैरह कुछ नहीं कर सकते, पुण्योदय ही यदि नहीं रहा तो लक्ष्मी चली जायेगी—लक्ष्मी जड़ है, मुझ से भिन्न है। मेरी शुद्ध चेतना रूप विभूति तो मेरे पास है, उसे तो कोई लूट नहीं सकता छू नहीं सकता, वहां किसी का प्रवेश ही नहीं।

अकस्मात् भय—सम्यक्दृष्टि के इस बात का भय

नहीं कि न मालूम किसी समय अचानक क्या हो जावे, उनको इस बात का भय नहीं कि बिजली गिर गई तो क्या होगा, भूकम्प आ गया तो क्या होगा, युद्ध हो रहा है बम्ब का गोला अचानक आ पड़ा तो क्या बनेगा ? इस प्रकार के खयाली भय उसके दिल में नहीं आते— प्रयत्न करता है नतीजे को कर्मोदय पर छोड़ देता है, भयभीत नहीं होता। यदि कोई ऐसी दुर्घटना, रक्षा का प्रयत्न करते २ भी हो जाती है तो कर्म का फल समझ धैर्य तथा समता भाव के साथ उसे सहन करता है, कायर नहीं होता।

इस प्रकार एक सम्यक्दृष्टि इन सब भयों से रहित होता है, निःशंक रहता है, उसे कोई भय छू नहीं पाता। वह आत्मबल का धनी विचारशील होता है, एक वीर योद्धा की तरह जीवन की कठिनाइयों को चीरता हुआ, अपने नियत मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ, अपने ध्येय की ओर सीधा चला जाता है।

प्रश्नावली

१. सम्यक्दृष्टि के भय होता है या नही ? यदि नही तो क्यों ?

२. भय कितने प्रकार का होता है ?

३, इस लोक भय और परलोक भय से तुम क्या समझते हो ?

४. मरण भय किसे कहते हैं ?

एक सम्यक्दृष्टि बीमार पड़ जाने पर अपना इलाज कराता है या नहीं ?

५. वेदना-भय क्या होता है।
६. अगुप्ति भय किसे कहते हैं।
७. अनरक्षा भय और अकस्मात भय से आप क्या समझते हैं?
८. आपत्ति के समय एक सम्यक्दृष्टि अपनी रक्षा के उपाय करता है या नहीं यदि करता है तो क्या समझ कर?
९. नीचे लिखी हालतों में सम्यक्दृष्टि क्या करता है और क्या नहीं?
(क) पुत्र के सख्त बीमार होने पर।
(ख) गली में भयानक मरी रोग के फैल जाने पर।
(ग) अकेला होते हुए किसी मुकदमे में फंस जाने पर।
(घ) भूचाल आने पर, बाढ़ आ जाने पर, मार्ग में जाते हुए डाकुओं के आ जाने पर, युद्ध में लड़ते २ शस्त्र द्वारा घायल होकर गिरते समय।

सम्यक्दृष्टि की निराभिमानता

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्यात्व के उदय से पर्याय बुद्धि हो रहा है। जाति, कुल, विद्या, बल, ऐश्वर्य, रूप, तप, धन आदि को अपना आपा मान गर्व किया करता है। वह अज्ञान से यह नहीं जानता कि ये सब कर्म के आधीन हैं, पुद्गल के विकार हैं, विनाशीक हैं, क्षण भंगुर हैं। सम्यक्दृष्टि समझता है कि ये सब मुझसे जुदा हैं, मेरा स्वरूप इन से भिन्न है, मैं

चेतना-स्वरूप हू, यह पर है, विनाशीक है, क्षणभंगुर है, इनका गर्व करना संनार भ्रमण का कारण है इसलिए सम्यक्दृष्टि किसी प्रकार का मद (घमंड) नहीं किया करता है। मान करने से नीच गति का बंध होता है।

मद आठ बातों का होता है—जाति मद, कुल मद विद्या मद, बल मद, एश्वर्य मद, रूप मद, तप मद, और धन मद।

जाति मद—माता के पक्ष को जाति कहते हैं। अपने नाना मामा के कुल का घमंड करना जाति मद है। मेरी माँ बड़े ऊँचे कुल की है, मेरे नाना मामा बड़े २ आदमी है, उन्होंने बड़े-बड़े कारज किये हैं, बड़े धनाढ्य हैं, चलती वाले हैं इत्यादि घमंड करना जाति मद हैं।

कुल मद—पिता के वंश को कुल कहते हैं। सम्यक्दृष्टि कुल का घमंड नहीं करता। वह तो विचारता है कि जाति और कुल का क्या मान करूं। यदि उच्च जाति और कुल का होकर थोथा मान करता हूं, नीच काम करता हूँ, निंद्य आचरण कर रहा हू तो धिक्कार है मेरे जीवन को। कर्मोदय से तदि उच्च जाति और कुल मिल भो गए तो मेरा कर्तव्य यह है

कि नीच व अधम आचरण का त्याग करूं, विवेक से काम लूं। कलह झगड़ा करना, मारन-ताड़न, गाली-गलौज, भंड वचन बोलना मुझे उचित नहीं। जुआ, वेश्या सेवन, परधन हरना, हिंसा करना, अन्याय-अनीति से धन कमाना उच्च-कुल और उच्च जाति वाले के लिए उचित नहीं। उच्च-कुल या जाति में जन्म लिया तो मेरा यही कर्तव्य है कि हिंसा न करूं, मांस-मदिरा का त्याग करूं, जीव-दया पालूं, परोपकार करूं, अपना आत्म कल्याण करूं यही मेरा कर्तव्य है। ऐसे ही सदाचार से उच्च-कुल और उच्च जाति की शोभा है। अनेक बार नाना प्रकार की उच्च व नीच जातियों में जन्म हुआ अब में किसी को नीच-जाति का मान काहे को मान करूं ? उच्च जाति में जन्म ले काहे को घमंड करूं। यह सब कर्मोदय जनित भेद है। मेरा मान करना मुझे अपने आपको नीच बनाना है, मुझे चाहिए कि अपने जीवन को क्षमा, स्वध्याय, दान, शील, विनय, परोपकार आदि सदगुणों द्वारा ऊंचा बनाऊं। वृथा जाति-कुल का मान करके अपने जीवन को नष्ट न करूं।

बल मद—शरीर के बल का मद करना मद है। सम्यक्दृष्टि बल का मद नहीं करता, वह विचारता है

 ठीक इसी तरह मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं।
कि यदि शारीरिक बल पाकर में निर्बलों का घात करूं गरीब कमजोरों के धन, धरती स्त्री आदि का हरण करूं, उनको छोटा समझ उनका अपमान और तिरस्कार करूं तो मेरे में और सर्प सिंह आदि दुष्ट हिंसक जीवों में क्या अन्तर रहा—अब पुण्योदय से यदि यह बल है तो मेरा कर्तव्य है कि इसमें दूसरों की रक्षा करूं, धर्म की रक्षा करूं, ब्रह्मचर्य का पालन करूं व्रत उपवास शील संयम का पालन करूं, तपश्चरण करूं, यदि कोई कष्ट या आपत्ति आवे तो उसमें कायर न होऊं। धैर्य के साथ सहन करूं, दीनता को पास न फटकने दूं। दीन हीन असमर्थ जनों के दुष्ट वचनों को सुनकर उनसे बदला चुकाने की सामर्थ्य अपने में होते हुए भी उनको क्षमा करूं। अपने आत्मबल के द्वारा तपश्चरण कर, कर्मों को क्षय कर, मोक्ष के स्वाधीन अविनाशी पद को प्राप्त करूं।

ऋद्धि मद—धन संपदा का घमंड करना ऋद्धिमद है। सम्यक्-दृष्टि धन संपदा को अपने आत्म कल्याण के रास्ते में एक बड़ी रुकावट समझता है। इसे राग, द्वेष, भय, मोह, संताप, शोक, क्लेश, बैर, हानि का प्रबल कारण समझता है। यह लक्ष्मी मनुष्य को मदोन्मत्त बनाने वाली है। वेश्या के समान चंचल है। इसका क्या पतियारा। आज नीच के घर है तो कल

ऊंच के हैं। सम्यक्दृष्टि इस पराधीन विनाशीक दुःख का कारण लक्ष्मी का गर्व नहीं करता, वह तो अपने आत्मा के अखंड ज्ञान को ही अपनी अटूट, स्वाधीन अविनाशी लक्ष्मी जानता है और भावना करता है कि कब इस विनाशीक लक्ष्मी को त्याग, गृह जंजाल से छूट, निर्ग्रन्थ बन शिवलक्ष्मी को प्राप्त करूं।

तप-मद—सम्यक्दृष्टि विचारता है तप का मद कैसा? तप का भी मद किया तो फिर क्यों किया—तप तो वहाँ है जहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं विकार परिणाम नहीं, आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं, इच्छाओं के निरोध का नाम ही तप है, जब इच्छाएं बनी रहो तो तप कहां? लालसा घटे नहीं, जीने की बाँछा रही, मरने से डरता है, हानि लाभ में, स्तुति-निन्दा में समता भाव हुआ नहीं फिर तप कैसा? तप तो वहां है जहां आत्म-ध्यान है, जहां शुद्धात्मा में तल्लीनता है—तप तो मेरे आत्म कल्याण का साधन है, इसका कैसा मान? जहाँ गर्व है वहां कर्म-बंध है जहां कर्म बंध है, वहां आत्म-विकास कैसा? धन्य है वे महान पुरुष जिन्होंने तप करके कर्मों को क्षय किया और परम वीतरागता को प्राप्त किया।

रुपमद—सम्यक्दृष्टि रुप का मद नहीं करता। रूप क्षणभंगुर है, पराधीन है, पुद्गल की पर्याय है, आत्मा का इससे क्या सम्बन्ध है, रूप का गर्व करना

व्यर्थ है। सुन्दर रूप को पाकर व्यभिचारी न बनना, शील में दूषण नहीं लगाना, दीन हीन दरिद्री, लंगड़े, लूले, अंगहीन, मलिन मनुष्यों को देखकर उनसे ग्लानि नहीं करना, उनका तिरस्कार नहीं करना, यह ही मेरा कर्तव्य है—ऐसा सम्यक्दृष्टि विचारता है—आज संसार में अपने आपको गोरी कहने वाली जतियाँ रूप के मद में मतवाली हो रही हैं, उससे जो जो हानियाँ उनकी अपनी और अन्य जातियों की हो रही हैं वे सब जानते हैं।

विद्या मद–जो ज्ञान इन्द्रियों के अधीन है, बात, पित्त, कफ के अधीन है, दिल-दिमाग आदि के खराब हो जाने पर जो ज्ञान क्षणमात्र में बिगड़ जाता है, उसका क्या गर्व करो, जो विद्या नाना प्रकार के घातक शस्त्रों द्वारा निर्दोष ग्राम, देश आदि के विध्वंस कर डालने में ही मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, जो विद्या भोलेभाले जीवों को लूटने-मारने, प्राण हरने का पाठ पढ़ाती है, जो विद्या झूटे का सच्चा कर देने तथा सच्चे को झूठा कर देने में, दूसरों को बाधा पहुंचाने में, सताने में, मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, उसका क्या मान करें, यह विद्या संसार भ्रमण से हमें छुड़ा नहीं सकती, हमारे अधिक पतन का कारण होती है—ऐसा एक सम्यक्दृष्टि विचारता है। वह तो उस ज्ञान

का पुजारी है जो उसकी आत्मा में भेद-विज्ञान जागृत कर देवे, जो उसके हीन आचरण को छुड़ा उसे उसके आत्म-कषाय से हटा परम समता की ओर ले जावे और संसार-भ्रमण से छूटने में सहायक हो। जहां ऐसा ज्ञान होगा वहां मद नहीं होगा।

ऐश्वर्य मद—राज्यपद तथा हुकूमत का अभिमान करना ऐश्वर्य मद है—सम्यक्दृष्टि ऐश्वर्य के नशे में चूर नहीं होता—ऐश्वर्य पाकर वह तो जीवों की सेवा तथा उपकार करना ही अपना कर्तव्य समझता है। वह विचारता है कि ऐश्वर्य पाकर निरभिमान रहना, बाधा रहित होना, न्याय करना, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखना, यथायोग्य छोटे बड़े सबका आदर-सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। दूसरे जीवों को दीन-हीन पीड़ित देखकर उनके दुख के कारणों को दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह ऐश्वर्य तो कर्माधीन है, क्षणभंगुर है, इसका क्या गर्व करूं ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनाशी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरूप है, मेरे लिए वही आदरणीय है।

इन आठों मदों पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्येक मनुष्य इनके जाल में फंस जाता है और अपने लिए संसार

को बढ़ा लेता है। इसके फंदे में न फंस कर मन पर अंकुश रख तथा जीवन को सफल बनाता है।

प्रश्नावल।

१. क्या सम्यक्दृष्टि वास्तव में निर्मद होता है ? होता है तो क्यों ?

२. मद कई प्रकार का होता है ? मदों के नाम बताओ।

३. कुल मद और जाति-मद से आप क्या समझते हैं।

४. एक धनाढ्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को ठुकरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है। यदि वह सम्यक्दृष्टि हो तो क्या करे ?

५. बल मद से तुम क्या समझते हो। एक बलवान लड़का अपने बल के कारण अपने कक्षा के गरीब निर्बल लड़कों को सताता है, दूसरा बलवान लड़का उनको दुखी देख कर सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है। मद कौन से और कितने है।

६. ऋद्धिमद और तप मद किसे कहते है। उदाहरण देकर समझाओ।

७. रूप मद किसे कहते है। बहुत सी गोरी रंग वाली जातियां अपने देशों में अन्य काले रंग वाली जाति वालों को घुसने नहीं देती अथवा अपने समान अधिकार नहीं देती, उनके मद हैं या नहीं, यदि है तो कौन सा मद है।

८. विद्या मद किसे कहते हैं। एक होशियार विद्यार्थी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रों से नाक भों चढ़ाता है। उसके साथ बैठना उठना पसन्द नही करता—क्या वह अच्छा करता है। उसका कौन सा मद है ?

९. ऐश्वर्य मद से तुम क्या समझते हो। एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पड़ौसी के मकान को अपने में मिलाने के लिए बहुत कम कीमत पर अपने मजिस्ट्रेट होने का डर दिखाकर लेना चाहता है,

मगर क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला सकती है।
क्या वह ठीक है ? उसके मद है या नहीं, यदि है तो कौन सा ?
१०. मान से क्या हानि होती है।

तीन मूढ़ता और छह अनायतन

बे सोचे समझे, बिना विचारे और परीक्षा किये बिना अन्धे की तरह लोगों के देखा देखी जिस प्रकार लोक में कोई प्रवृत्ति चल रही है, उसके अनुसार कुदेव कुगुरु, कुशास्त्र और कुधर्म को मानना, उनकी प्रशंसा करना मूढ़ता है। सम्यक्त्वी इस प्रकार की मूढ़ता में नहीं फंसता वह तो विचार और परीक्षा के साथ ही धर्म की बातों को मानता है। मूढ़तायें तीन हैं - देव मूढ़ता, लोक मूढ़ता और गुरु मूढ़ता।

देव मूढ़ता—बिना विचारे लोगों की देखा देखी रागी द्वेषी देवों को मानकर पूजना और उनके अपने संसारी कार्यों की सिद्धि मानना। देव मूढ़ता है।

लोक मूढ़ता - मिथ्यादृष्टियों की देखा देखा बिना विचारे ग्रहण में पुण्य मानना, कुंआ पूजना, पीपल पूजना, किसी नदी में स्नान कर लेने मात्र से मुक्ति हो जाना, नाना रूप में पैसे की पूजा करना, दवात

लम बहीखाते का पूजना, बालू रेत का ढेर लगाकर
ा कंकरियों या ढेर लगाकर पूजना, पर्वत से गिरकर
ाण खो देने में मुक्ति मानना, काशी करौंत लेना,
ल कर सती होने में धर्म मानना, इत्यादि यह सब
ोक मूढ़ता के दृष्टान्त हैं। सम्यक्‌दृष्टि इस प्रकार
ी कोई क्रिया नहीं करता है, योग्य-अयोग्य, सत्य
ासत्य, हित-अहित का विचार करके विवेक पूर्वक
रता है।

गुरु मूढ़ता — भय से, लोभ से तथा आशा से रागी,
षी, कामी, दम्भी, इन्द्रिय विषय लंपटी वेषधारी
ाखंडी गुरुओं का मानना गुरु मूढ़ता है। सम्यक्दृष्टि
से गुरु की भक्ति उपासना कभी नहीं करता, वह
ो परम ज्ञानी, परम ध्यानी, तपस्वी निर्ग्रन्थी गुरुओं
ी ही भक्ति, पूजा, वैयावृत्य आदि किया करता है।
म्यक्दृष्टि लोक प्रवृति का कुछ भी आश्रय नहीं लेता
वह सब काम विचार पूर्वक ही किया करता है।

अनायतन धर्म के आश्रय या स्थान को आयतन
हते हैं, खोटे आश्रय को अनायतन कहते हैं।
नायतन छह हैं 'खोटे गुरु' 'खोते शास्त्र' और 'खोटे
व' का 'श्रद्धान या सेवन करने वाला' 'खोटे गुरु की
क्ति करने वाला' और 'खोटे शास्त्र का पढ़ने

वाला।' ये छह धर्म के आयतन नहीं हैं, अनायतन हैं। इनकी भक्ति से मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। सम्यक्दृष्टि 'तीन मूढ़ता' 'आठ मद' 'आठ शंकादिक दोष' 'छह अनायतन' इन पच्चीस दोषों को टाल लगातार व्यवहार सम्यक्दर्शन को धारण करके निश्चय सम्यक्दर्शन को प्राप्त करता है। जिसके ऊपर लिखे पच्चीस दोष रहित शुद्ध आत्मा का श्रद्धा भाव होता है, उसी ही के नियमपूर्वक निश्चय सम्यक् दर्शन होता है। जिसका व्यवहार सम्यक्त्व ही दूषित है उसके निश्चय सम्यक्त्व कैसे शुद्ध हो सकता है।

एक अविरत सम्यक्दृष्टि भी जहां तक उसका वश चलता है कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तथा कुधर्म को नमस्कार नहीं करता। अन्य व्यवहारियों की लौकिक रीति अनुसार यथायोग्य विनय, सत्कार जरूर करता है, यदि कोई उस पर जबरदस्ती जोरावरी करता है तो वह देश को छोड़ना, आजीविका को छोड़ देना, धन को त्याग देना इत्यादि बातों को तो स्वीकार कर लेता है परन्तु कुगुरु, कुशास्त्र तथा अन्य कुलिंगियों की आराधना वह कभी मंजूर नहीं करता, इती श्रावकों का तथा साधु महाराज का तो कहना ही क्या है?

१ [illegible]

दुनिया जिसे बुरा कहती है।

प्रश्नावली

१. मूढ़ता किसे कहते हैं मूढ़ताएं कितने प्रकार की होती हैं।
२. देव मूढ़ता का स्वरूप उदाहरण देकर समझाइयेगा।
३. गुरु मूढ़ता क्या होती है ? उदाहरण भी दो।
४. लोकमूढ़ता किसे कहते हैं। उदाहरण देकर समझाओ।
५. अनायतन से क्या समझते हो ? अनायतन कितने होते हैं ? उनके नाम बताओ।
६. अनायतन की भक्ति से क्या हानि होती है।
७. सम्यक्त्व के २५ दोष कौन से हैं। उनके नाम बताओ।

सम्यक्दृष्टि के बाहरी चिन्ह

और

विशेष गुण

सम्यक्-दृष्टि के नीचे लिखे आठ बाहरी गुण प्रकट होते हैं :—

(१) संवेग—सम्यक्दृष्टि के धर्म में अनुराग होता है। वह अन्याय के विषय श्रृंगार, विकथाओं में, पापमय संगति में, स्त्री, पुत्र, धन आदिक में अनुराग नहीं करता—उसको तो दशलक्षण धर्म में, धर्मात्मा पुरुषों की संगति में, धर्म-कथा में और धर्मायतनों में प्रेम होता है।

(२) निर्वेद—सम्यक्दृष्टि संसार, शरीर और भोगों से स्वभाव से ही विरक्त होता है। वैराग्य तथा उसके साधनों से उसे बड़ा प्रेम होता है, वह धर्म प्रेम में ही रंगा रहता है।

(३) आत्म-निन्दा—मनुष्य जन्म पाना कठिन है, यदि एक क्षण भी मेरे जीवन की धर्म साधन बिना जाती है तो बड़ा अनर्थ है, ऐसा एक सम्यक्दृष्टि विचारता है। यदि किसी समय उसको प्रमाद आ जाता है या उसके परिणाम असंयम रूप हो जाते हैं तो वह अपने दोष को विचार कर अपनी निन्दा करता है।

(४) गर्हा—यदि किसी सम्यक्दृष्टि से कोई खोटा आचरण हो जाता है या उसे कोई दोष लग जाता तो वह गुरु या विशेष ज्ञानी साधर्मीजन के पास जाकर नियम सहित अपने उस खोटे आचरण को या दोष को प्रकट करता है।

(५) उपशम—सम्यक्दृष्टि की आत्मा में परम-शांत भाव रहता है, उसके कषाय की मंदता होती है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, शत्रुता का भाव इत्यादि को वह अपनी आत्मा का घातक समझ कर इनको सदैव मन्द करता है। यदि कारणवश उसे कभी क्रोध आता भी है तो भी उनका हेतु अच्छा होता है, क्रोध को भी दूर कर शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

 वे घमंड और खुदनुमाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(६) भक्तिः—सम्यक्त्वी देव, शास्त्र, गुरु का परम भक्त होता है, भक्ति से पूजन-पाठ करता है, शास्त्र पढ़ता है, गुरु सेवा करता है, धर्मात्माओं की यथा-योग्य विनय करता है।

(७) वात्सल्य - धर्म और धर्मात्माओं में गौ बच्चे के समान प्रीति रखता है। धर्म के ऊपर या धर्मात्माओं पर किसी समय कोई आपत्ति आती है तो वह तन, मन, धन से जिस प्रकार भी बने उसको दूर करने का प्रयत्न करता है।

अनुकम्पाः - सम्यवदृष्टि बड़ा दयालु होता है। दूसरों के दुःख को वह अपना दुःख समझता है, उस को दूर करना कराना अपना धर्म समझता है।

सम्यक्दृष्टि सदा सुखी रहता है। उसको स्वाभाविक सुख जब चाहे मिल सकता है, सांसारिक सुख दुःख उसके मन को विचलित नहीं कर सकते। सम्यग्दृष्टि प्राणी-मात्र के साथ मैत्री-भाव रखता है, दीन दुखी जीवों पर करुणा करता है, यथाशक्ति उनके दुखों को दूर करने का प्रयत्न करता है। गुणवानों को देखकर प्रसन्न होता है, उनकी विनय करता है। उनकी सेवा टहल करता है। जिनके साथ अपनी बात नहीं बनती उन पर द्वेष नहीं करता,

उनके प्रति माध्यस्थ भाव रखता है। सम्यक्दृष्टि के लाभ में हर्ष और हानि से शोक नहीं होता है। सादा और सन्तोषमय जीवन व्यतीत करता है, यथाशक्ति दान देता है।

सम्यक्दृष्टि विवेकी विचारवान होता है, किसी पर अन्याय या जुल्म नहीं करता, सम्यक्दृष्टि दयावान होता है। सम्यक्दृष्टि अपने बर्ताव और व्यवहार से जगत का प्यारा हो जाता है, सम्यक्दृष्टि बड़ा साहसी होता है, वह आपत्तियों से घबराता नहीं अपने धर्म से गिरता नहीं। जिसके सम्यक्-दर्शन दृढ़ हैं और जो सदाचारी है वही पंडित है, वही विनयवान् है, वही धर्म का जानने वाला है, वही ऐसा मनुष्य है जिसका दर्शन औरों को प्रिय होता है।

प्रश्नावली

१. सम्यक्दृष्टि के बहिरंग के आठ गुण कौन-कौन से है ?
२. संवेग और निर्वेद गुण क्या होते है ? दोनों में क्या अन्तर है ?
३. आप आत्म-निन्दा और गर्हा से क्या समझते है ? दोनों का अन्तर बताओ ?
४. उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा इन चारों से आप क्या समझते हैं ?
५. सम्यक्दृष्टि के विशेष गुणों का वर्णन संक्षेप में करो।

सयम्क्दर्शन की महिमा

सम्यक्दर्शन की अपूर्व महिमा है, सम्यक्दृष्टि सदा सन्तोषी रहता है, सम्यक्दृष्टि यदि चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से व्रत उपवास थोड़े भी न कर सके तो भी उन सम्यक्दष्टियों की इन्द्र पूजा करते हैं यद्यपि वे गहस्थी हैं परन्तु वे घर के मोह में नहीं फंसे हुए हैं—जैसे जल के अन्दर जन्म लेने वाला, उसी में रहने वाला कमल जल से अलग रहता है, जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना भी निर्मल रहता है, वैसे हो गहस्थी सम्यक्दृष्टि भी निर्मल रहते हैं । सम्यक्दष्टि मर कर पहले नर्क के सिवाय बाकी छह नर्कों में, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवन-वासी देवों में, नपुंसकों और स्त्रियों में स्थावर एकेंद्रिय में, दो इन्द्रिय में, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, विकलत्रय और पशुओं में जन्म नहीं लेता । चांडाल माता पिता से उत्पन्न एक चांडाल भी यदि सम्यक्दर्शन सहित है तो उसे भगवान् गणधर देव 'देव' ही कहते हैं । पूजा गुणों की है, न कि शरीर की । शरीर की पूजा कौन करता है ? कौन ज्ञानी इससे राग करता है ? कौन इसकी पूजा वन्दना करता है ? यह तो सम्यक्दर्शन गुण के प्रकट होने पर वन्दने तथा पूजने योग्य होता है । धर्म के प्रभाव से एक कुत्ता

भी मर कर स्वर्ग में जाकर देव हो जाता है और पाप के निमित्त से स्वर्ग का महाऋद्धिधारी देव भी पृथ्वी पर आकर कुत्ता ही होता है। ऐसी सम्यक्दर्शन की महिमा है। सम्यक्दर्शन ज्ञान और चारित्र से बढ़ कर है। क्योंकि सम्यक्दर्शन रत्न-त्रय रूप मोक्षमार्ग में सबसे प्रधान माना गया है। जैसे समुद्र के पार ले जाने में एक अच्छा खेवटिया ही दक्ष और समर्थ होता है, वैसे ही संसार समुद्र में से रत्नत्रय रूप जहाज को पार ले जाने के लिए सम्यक्-दर्शन ही एक समर्थ खेवटिया है। रत्नत्रय में सम्यक्-दर्शन ही सब से श्रेष्ठ है। सम्यक् दर्शन ही ज्ञान चारित्र का बीज है, यम और शान्त भाव का जीवन है, तप और स्वाध्याय का आधार है, जिसे निर्मल सम्यक्-दर्शन प्राप्त हो गया वह पुण्यात्मा है, मानों मुक्त रूप ही है, क्योंकि मोक्ष के प्रधान कारण ये ही हैं। वास्तव में प्राणियों के लिए सम्यक्-दर्शन जैसा तीन काल और तीनों लोक में और कोई कल्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व जैसा अपकार करने वाला तीन काल में और तीन लोक में कोई भी द्रव्य चेतन या अचेतन न हुआ है, न है और न होगा। सम्यक्दर्शन से पवित्र पुरुष मनुष्यों का तिलक होता है। सम्यक्दृष्टि ही पराक्रम, प्रताप, विजय, शक्ति, यश, गुण, सुख, वृद्धि, विनय

और विभव आदि इन समस्त गुणों का स्वामी होता है। महान् धर्म, महान अर्थ, महान काम, महान मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों का स्वामी होता है। सम्यक्-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य महाऋद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है। सम्यक्-दर्शन की ही बदौलत एक जीव देवेन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तथा गणधर देवों द्वारा पूज्य तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है। सम्यक्-दर्शन का धनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनाशी सुख को प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक् दर्शन की महिमा को जानकर अन्य जीवों को सम्यक् दर्शन रूप अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक् दर्शन अनुपम, अतीन्द्रिय, सहज सुख का भंडार है। सर्व कल्याण का बीज है, संसार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान है, भव्य जीव ही इसको पा सकते हैं, यह पापरूपी वृक्ष के काटने को कुठार है। पवित्र तीर्थों में ये ही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

प्रश्नावली

१. गृहस्थी सम्यक्दृष्टि गृहस्थ में रहते हुए भी निर्मल है ? दृष्टांत देकर समझाओ।

२. सम्यक्दृष्टि मर कर कहां-कहां जन्म नहीं लेता ?

३. रत्नत्रय में सम्यक् दर्शन को सबसे मुख्य और श्रेष्ठ क्यों माना गया है ?

४. संसार में जीव के लिए श्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ? और सबसे ज्यादा हानिकारक कौन है ?

५. एक सम्यक्दृष्टि चाण्डाल भी देवों कर पूजनीक होता है, इस सम्बंध में कोई कथा याद हो तो सुनाओ।

६. सम्यक्दृष्टि-दर्शन की विशेष महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।

७. सम्यक्-दर्शन का फल क्या होता है ?

वीर शिरोमणि चामुण्डराय

संसार में सत्यवादी, परोपकारी, भक्त, कवि, विद्वान, शिल्प के जानने वाले, योद्धा, धर्मज्ञ और दान-वीर बहुत हो चुके हैं और होते रहेंगे, परन्तु ऊपर लिखे सब गुणों का एक ही व्यक्ति में पाया जाना आश्चर्यजनक और कठिन सी बात है। ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति देखने और सुनने में आये हैं, परन्तु जैन समाज में वीर शिरोमणि चामुण्डराय ऐसे सब ही गुणों के धारक व्यक्ति हो चुके हैं। उन्होंने संसार में जन्म लेकर अपने कर्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया और केवल जैन समाज ही नहीं, किन्तु सारे संसार के लिए आगामी काल में एक सद्गृहस्थ का आदर्श बना-कर छोड़ गये हैं। ऐसे नर-रत्न का नाम जैन इतिहास में सुनहरी अक्षरों में अंकित रहेगा।

कर्तव्य पालन करना जान जोखों का काम है। देश-सेवा और धर्म के कारण अपने आपकी आहुति देना जीवन का उद्देश्य है। खाना-पीना, मौज उड़ाना

और साधुता तथा पवित्रता बिल्कुल दूसरी चीज है। यह तो पशुओं में भी पाया जाता है। एक कर्तव्य पालन ही मनुष्य में विशेषता रखता है। यदि यह विशेषता न हो तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है।

द्रव्य दान देने वाले बहुत हैं परन्तु जननी और जन्म भूमि की सेवा में अपने आप को बलिदान करने वाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। वीर चामुण्डराय का जीवन ऐसी २ बातों से भरा हुआ है। जैन धर्मानुयायी गंग वंश मैसूर प्रान्त में सन् २०३ ई० से सन् १००४ तक बराबर राज्य करता रहा, इस ही कुल में राजा राचमल्ल द्वितीय (६७४-६८४) हुए हैं। वीर शिरोमणि चामुण्डराय इन्हीं राजा राचमल्ल के मन्त्री व सेनापति थे। राजा चामुण्डराय ब्रह्मक्षत्र वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम और जन्म दिन अभी ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी माता का नाम कललदेवी और स्त्री का नाम अजितादेवी था। श्री अजितसेनाचार्य और श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती इनके गुरु थे।

चामुण्डराय की माता जैन धर्म से बड़ा प्रेम रखती थी जिससे पता चलता है कि चामुण्डराय के पूर्वज भी जैनधर्म के अनुयायी होंगे। वीर चामुण्डराय राजा राचमल्ल के मन्त्री होते हुए भी जिस ढंग से कार्य करते थे वह लेखनी से बाहिर है। इतिहास तथा

प्राचीन शिलालेखों से पता चलता है कि उनके मंत्रित्व काल में गंगवाड़ी (मैसूर) में विद्या, कला, शिल्प और व्यापार की अति वृद्धि थी। प्रजा सुखी और मालामाल थी।

उस समय राष्ट्रकूट राजाओं की चलती थी, चामुण्डराय ने गंग राजाओं से उनकी मैत्री करा दी। जिन राजाओं से मैत्री की, उनको लड़ाई में बड़ी सहायता दी और उनके लिए लड़ाईयां लड़कर उन्हें गंग वंश का चिरऋणी बना दिया। इससे प्रकट है कि चामुण्डराय राजनीति में बड़े निपुण थे। वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, किन्तु बड़े योद्धा भी थे। शस्त्र विद्या में प्रवीण और निपुण थे। इस शस्त्र विद्या का ज्ञान उन्हें आर्यसेन आचार्य द्वारा प्राप्त हुआ था परोपकार के लिए युद्ध करना एक गृहस्थ का कर्तव्य है। राजा चामुण्डराय ने अपने इस कर्तव्य का पालन खूब अच्छी रीति से किया। वे रणभूमि में प्राण देने से नहीं डरते थे। उन्होंने खड़ग और नीलम्ब की लड़ाईयों में बड़ी वीरता दिखाई और विजय पाई। कितने ही किलों को जीत कर उन पर अपना अधिकार किया। कितने ही बड़े बड़े राजाओं को पराजित करके उनके अपराध का उनको उचित दण्ड दिया। इसी प्रकार के अनेक वीरता के कार्यों के कारण ही उन्हें बहुत सी उपाधियां प्राप्त हुईं। वे

समर-धुरन्धर, वीर मार्तण्ड, रणरंगसिंह, बैरी कुल काल दंड, भुजविक्रमी, छल दंक गंग, समर-परशुराम, भटमारि, सुभट चूडामणि, वीर शिरोमणि आदि कितनी ही उपाधियों से विभूषित थे।

राजा चामुण्डराय केवल योद्धा ही नहीं थे, वे बड़े विद्वान भी थे। साहित्य और कविता खूब अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत, प्राकृत, कनड़ी भाषा के पूर्ण विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत में चारित्रसार ग्रन्थ रचा। कनड़ी भाषा में चामुण्डराय पुराण की रचना की। श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती ने जब राजा चामुण्डराय की प्रार्थना पर श्री गोमटसार प्राकृत ग्रंथ की रचना की तो चामुण्डराय कनड़ी भाषा में साथ-साथ उसका अनुवाद करते जाते थे। इसी टीका के आधार पर केशव-वर्णी ने संस्कृत टीका बनाई। इससे यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि चामुण्डराय शास्त्र के उच्चकोटि के ज्ञाता और कवि थे।

चामुण्डराय श्रावक भी पक्के थे, वह श्रावक धर्म का पूर्ण रीति से पालन करते थे, सदैव सत्य बोलते थे, इसीलिए वे 'सत्य युधिष्ठर' कहलाते थे। धर्म कार्यों में उनकी रुचि सदैव बनी रहती थी। अपने बनाये चारित्रसार में वीर चामुण्डराय ने मुनि धर्म और श्रावक धर्म दोनों का पूर्ण रीति से वर्णन किया है, इससे जान पड़ता है कि वह श्रावकाचार के पालने वाले थे इसी कारण वह 'सम्यक् रत्नाकर' कहलाते थे।

जब तक 'श्रवणवेलगोल' में भगवान् गोमट्ट स्वामी की मूर्ति स्थापित है, तब तक चामुण्डराय का नाम लोक में प्रसिद्ध रहेगा। यह पाषाण की खड्गासन मूर्ति ५७ फुट ऊँची है। बड़ी मनोहर और दर्शनीय है। कारीगरी खतम की हुई है। देश विदेशों से बड़े यात्री इस विशाल मूर्ति को देखने आते हैं। बहुत से कहते हैं कि राजा चामुण्डराय ने बहुत धन खर्च करके इस मूर्ति को बनवाया था, बहुत से कहते हैं कि यह मूर्ति बहुत पुरानी है चामुण्डराय ने इसे पृथ्वी से निकाल कर फिर से स्थापित कराया था। चाहे कुछ भी हो चामुण्डराय का विशाल मूर्ति से बड़ा भारी सम्बन्ध है। राजा चामुणराय ने इस विशाल मूर्ति की बहुत रुपया खर्च करके प्रतिष्ठा कराई थी। इस मूर्ति की पूजा और रक्षा के लिए बहुत गांव इसके सम्बन्ध में लगा दिये। 'श्रवण वेल गोल' नगर में एक मठ जिसके मठाधीश श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धान्त चक्रवर्ती हुए स्थापित किया।

चामुण्डराय ने जाति और देश सेवा के बहुत से शुभ कार्य किये। धर्म कार्य के लिए वह हर समय तैयार रहते थे। उन्होंने बहुत से जिन मन्दिर बनवाये, शास्त्र लिखवाये, बहुत सी पाठशालाएँ स्थापित कीं जिनमें न केवल धर्म की ही, परन्तु शिल्पशास्त्र, ज्योतिष विद्या आदि सर्व ही विद्याएं सिखाई जाती थीं।

यद्यपि राजा चामुण्डराय इस समय संसार में नहीं हैं किन्तु उनके जीवन की घटनायें देखी जावें तो अभी तक संसार में जीवित हैं । उनका चरित्र श्रावकों के लिए बड़ा शिक्षाप्रद और एक आदर्श गृहस्थ, धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थ के पालने वाले का प्रमाण है । उनके जीवन से हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थ के लिए धर्मार्थ शस्त्र धारण करना कोई पाप नहीं है, शस्त्र धारण करने से मनुष्य धर्मच्युत नहीं कहा जा सकता । चामुण्डराय सेनापति होकर भी अणुव्रती सम्यक्दृष्टि गृहस्थ थे । ऐसा झलकता है, उनका चरित्र पढ़कर हमें चाहिए कि कायरता छोड़, वीरता का भाव अपने मन में जागृत करें । व्यायाम कर तथा शस्त्र विद्या का अभ्यास कर अपने पूर्ण बल और पौरुष को प्रगट करें और अद्भुत लौकिक व पारमार्थिक कार्यों को करने के लिए अपने को शक्तिशाली और साहसी बनावें ।

प्रश्नावली

१. वीर शिरोमणि चामुण्डराय का जन्म किस देश और किस कुल में हुआ ?
२. क्या उनके माता पिता का नाम बता सकते हो ? उनके धर्म गुरु कौन थे ?
३. चामुण्डराय अपने किन-किन गुणों के कारण प्रसिद्ध हुए ?
४. चामुण्डराय ने ऐसा कौनसा कार्य किया जिसके कारण आज तक उनका यश गाया जाता है ?

और उसे भुला देने से बढ़कर दूसरी कोई बुराई नहीं है।

५. चामुण्डराय ने कौन २ से ग्रन्थ लिखे ?

६. चामुण्डराय के जीवन से क्या २ शिक्षाएं मिलती हैं !

सम्यक्ज्ञान

जैसे सम्यक्दर्शन गुण आत्मा का स्वभाव है वैसे ज्ञान गुण भी आत्मा का स्वभाव है। सम्यक्दर्शन सहित ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं, परन्तु हैं दोनों जुदा-जुदा। इन दोनों के लक्षण में भेद है। सम्यक्त्व का लक्षण श्रद्धान करना है और ज्ञान का लक्षण ठीक ठीक जानना है। सम्यक्-ज्ञान कार्य है। यद्यपि ये एक ही समय में होते हैं तो भी इनमें कार्य कारण का भेद है, जैसे दीपक जलने के साथ ही प्रकाश होता है पर दीपक प्रकाश का कारण है। बिना सम्यक्त्व अर्थात् सच्ची श्रद्धा हुए बिना ज्ञान को सम्यक्ज्ञान नहीं कहते इसीलिए सम्यक्दर्शन कारण है और सम्यक्ज्ञान कार्य है।

वस्तु के स्वरूप को ठीक २ जैसा है वैसा जानना न कम जानना, न अधिक जानना, विपरीत नहीं जानना और संशय-रूप नहीं जानना, ऐसे जानने का नाम सम्यक्ज्ञान है। ज्ञान का काम जानना है, मात्र प्रकाश करना है।

तत्व ज्ञानी सम्यक्-दृष्टि का यह ज्ञान कि मैं निश्चय से परमात्मावत् शुद्ध निर्विकार ज्ञातादृष्टा हूँ,

आत्मज्ञान कहलाता है, यही ज्ञान परम सुख साधन है।

इसी आत्म ज्ञान या निश्चय ज्ञान की प्राप्ति के लिये श.स्त्र के द्वारा छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थों का ज्ञान जरूरी है। इस शास्त्राभ्यास का नाम व्यवहार सम्यक्ज्ञान है। जिनवाणी में बहुत से शास्त्र हैं उनको चार अनुयोगों में बांट दिया गया है, जिनको चार वेद भी कहा जा सकता है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

(१) प्रथमानुयोग—प्रथम अवस्था के कम ज्ञान वाले शिष्यों को तत्वज्ञान की रुचि कराने में जो समर्थ हो उसको प्रथमानुयोग कहते हैं। इसमें उन महान् पुरुषों और महान स्त्रियों के जीवन चरित्र हैं जिन्होंने धर्म धारण करके अपने आत्मा की उन्नति की है। इसमें उनके भी चरित्र हैं जिन्होंने पाप बांध कर दुःख उठाया है व जिन्होंने पुन्य बाँधकर सुख साताकारी साधन प्राप्त किया है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हमको भी पाप का त्याग करना चाहिए और धर्म का साधन करके अपना हित करना चाहिये। इस योग के ग्रन्थ आदिपुराण, हरिवंशपुराण, पार्श्वपुराण आदि हैं।

(२) करणानुयोग—करणानुयोग में लोकाकाश, अलोकाकाश, काल विभाग, नरक तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप चारों गतियों के भ्रमण का वर्णन है। कर्म क्या है ? कर्म कैसे बंधते हैं, कैसे उनका संक्रमण होता है, मार्गणा क्या है ? गुण स्थान क्या है ? इत्यादि वर्णन करणानुयोग में पाया जाता है। आत्म ज्ञान के लिए करणानुयोग बड़ा सहायक है। इस योग के ग्रंथ गोमट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि हैं।

(३) चरणानुयोग—निश्चय चारित्र की प्राप्ति के लिए जिस-जिस व्यवहार चारित्र की जरूरत है वह सब चरणानुयोग में बताया गया है, मुनि का चारित्र क्या है ? गृहस्थ का चारित्र क्या है ? यह सब विस्तार से चरणानुयोग के ग्रन्थों में ही बताया गया है। ऐसे ढंग से कि हर एक मनुष्य अपने अपने पद और योग्यतानुसार उस चरित्र का पालन कर सके और न्याय नीति से गृहस्थ के कार्यों को करते हुए अपने सहज सुख का साधन कर सके। यह सब कथन कि किस-किस चारित्र के पालन से वैराग्य अधिक बढ़ता है, आत्म बल की वृद्धि होती है, आत्म ध्यान की अधिक-अधिक सिद्धि होती है, चरणानुयोग

के ग्रन्थों में पाई जाती है। चरणानुयोग के ग्रन्थ मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार, रत्नकरंडश्रावकाचार इत्यादि अनेक हैं।

(४) द्रव्यानुयोग—इसमें छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थ का व्यवहार नय रूप से पर्याप्त रूप और निश्चय नय से द्रव्य रूप कथन है। इसमें शुद्ध आत्मानुभव के साधन बताये गये हैं, जीवन मुक्त होने का मार्ग बताया गया है—आत्मा से परमात्मा बनने का साधन या उपाय इस अनुयोग में बताया गया है।

इन ऊपर लिखे चारों अनुयोगों के शास्त्रों का नित्य प्रति अभ्यास करना सम्यक्ज्ञान का सेवन है।

प्रश्नावली

१. सम्यक्-ज्ञान किसे कहते है ? सम्यक्-दर्शन और सम्यक्ज्ञान मे क्या अन्तर है ? दृष्टान्त देकर समझाओ।

२. निश्चय सम्यक्-ज्ञान किसे कहते है ? और व्यवहार सम्यक्ज्ञान क्या है ?

३. जिनवाणी को कौन २ से मुख्य चार भेदो मे बांटा गया है उनके नाम बताओ।

४. प्रथमानुयोग किसे कहते है ? प्रथमानुयोग के कुछ मुख्य मुख्य ग्रन्थों के नाम बताओ।

५. चरणानुयोग से आप क्या समझते हैं ? मुख्य-मुख्य ग्रन्थों के नाम बताओ ?

६. करणानुयोग मे क्या विषय है ? उसके मुख्य २ ग्रंथ कौन से हैं ?

७. द्रव्यानुयोग मे किस विषय का कथन है ? आजकल उपलब्ध मुख्य ग्रन्थ कौन २ से हैं ?

८. सम्यक्-ज्ञान का सेवन क्या है ?

सम्यक्ज्ञान के आठ अंग

जैसे सम्यक्दर्शन के आठ अंग हैं वैसे ही सम्यक्-ज्ञान के आठ अंग हैं, यदि आठ अंग के साथ शास्त्राभ्यास किया जावेगा तो ही ज्ञान की वृद्धि होगी, अज्ञान का नाश होगा और भावों की शुद्धि होगी, कषायों की मन्दता होगी, संसार से राग घटेगा, वैराग्य बढ़ेगा, सम्यक् की निर्मलता होगी । आठ अंगों को ध्यान में रखते हुए शास्त्रों का अभ्यासी मन, वचन, काय को लीन कर लेता है, पढ़ते-पढ़ते आत्मानन्द की छटा आ जाती है ।

सम्यक् ज्ञान के पाठ अंग ये हैं—

(१) व्यंजन शुद्धि—अर्थात् ग्रन्थ शुद्धि—शास्त्र के वाक्यों का शुद्ध पढ़ना, ठीक-ठीक सही उच्चारण करना तब तक शुद्ध न पढ़ेंगे तब तक उसका अर्थ समझ में नहीं आयेगा ।

(२) अर्थ शुद्धि–शास्त्र का अर्थ ठीक ठीक समझना—ग्रन्थ के बनाने वाले आचार्य महाराज ने

जो भाव ग्रन्थ में भरा है उसको ठीक ठीक समझना अर्थ शुद्धि है।

(३) उभय शुद्धि—ग्रन्थ का शुद्ध पढ़ना और उसके अर्थ को शुद्ध समझना। दोनों बातों का ध्यान एक ही साथ रखना उभय शुद्धि है।

(४) कालाध्ययन—शास्त्रों को यथा योग्य समय पर पढ़ना, शास्त्रों को ऐसे समय पर पढ़ना चाहिए जब परिणामों में निराकुलता हो। संध्या का समय आत्म ज्ञान तथा सामायिक करने का होता है, उस समय को सबेरे, दोपहर तथा शाम से बचा लेना चाहिए। जब कोई घोर आपत्ति का समय हो, तूफान आ रहा हो, भूकम्प आ रहा हो, घोर कलह या युद्ध हो रहा हो, किसी महान पुरुष के मरण का शोक मनाया जा रहा हो, ऐसे आपत्ति के समय पर शास्त्र पढ़ने में उपयोग नहीं लगता, उस समय पर तो शांति के साथ ध्यान करना ही योग्य है।

(५) विनय—शास्त्र को बड़े आदर से पढ़ना चाहिये। शास्त्र पढ़ते समय बड़ी भक्ति और प्रेम होना चाहिये। शास्त्र पढ़ते समय भावना होनी चाहिये कि मेरे जीवन का समय सफल हो, मुझे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो।

(६) उपाधान—धारणा सहित ग्रन्थ को पढ़ना चाहिए जो कुछ पढ़ा जावे, वह भीतर जमता जाये, यदि पढ़ते चले गये और कोई बात ध्यान में नहीं जमी तो अज्ञान तो मिटेगा नहीं, लाभ क्या होगा ? यह अंग बड़ा जरूरी है, ज्ञान का प्रबल साधन है।

(७) बहुमान—शास्त्र को बड़े मान प्रतिष्ठा से ऊँची चौकी पर विराजमान करके आसन से बैठकर पढ़ना बाँचना उचित है। शास्त्रों को अच्छे अच्छे सुन्दर गत्तों तथा वेष्ठनों से भूषित करके ऐसी अलमारियों में सुरक्षित रखा जावे जहाँ दीमक, चूहे आदि उनको बिगाड़ न सकें।

(८) अनिन्हव—यदि अपने को शास्त्र ज्ञान हो और कोई उनकी बाबत हम से कुछ पूछे तो बता देना चाहिए, समझा देना चाहिये, छिपाना नहीं चाहिये, जिस गुरु से या जिस शास्त्र से ज्ञान प्राप्त हो उसका नाम न छिपावे।

यह सम्यक्ज्ञान के आठ अंग कहलाते हैं, इन आठों अंगों सहित जो शास्त्रों का अभ्यास करता है, मनन करता है, वह व्यवहार सम्यक् ज्ञान का सेवन करता हुआ निश्चय सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्नावली

१. सम्यक्ज्ञान के आठ अंग कौन-कौन से है ? उनके नाम बताओ।

२. व्यंजन शुद्धि, अर्थशुद्धि और उभयशुद्धि से आप क्या समझते है ? दृष्टान्त देकर समझाओ।

३. कालाध्ययन किसे कहते है ? किस समय कैसे कैसे और कौन-कौन से ग्रंथ पढ़ने चाहिएं ?

४. शास्त्र की विनय क्या है ?

५. उपाधान किसे कहते है ?

६. बहुमान और अनिन्हव अंग का स्वरूप समझा कर बताइये।

ज्ञान के आठ भेद

प्रमाण ज्ञान के मुख्य पांच भेद बताये गये हैं—मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि दोनों के हो सकते हैं और मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान सम्यक्दृष्टि के ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुज्ञान अर्थात् खोटा ज्ञान कहलाता है। इससे मति, श्रुति और अवधि यह तीन ज्ञान जब मिथ्या-दृष्टि के होते हैं तो कुमति, कुश्रुति और कुअवधि कहलाते हैं। इस प्रकार तीनों कुज्ञानों को मिलाकर ज्ञान के आठ भेद हो जाते हैं।

मतिज्ञान—पांच इन्द्रियों और मन की सहायता से सीधा पदार्थ का जानना मतिज्ञान है—मति ज्ञान से जाने हुवे पदार्थ के सम्बन्ध में और विशेष बात को जानना श्रुतिज्ञान है। जैसे ठंडी हवा ने हमारे शरीर को जब छुवा, हमने स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा हवा के ठंडेपने को जाना, यह तो मतिज्ञान हुआ परन्तु यह जानना कि यह ठंडी हवा लाभदायक है या हानिकारक, यह श्रुतिज्ञान है। रसना इन्द्रिय के द्वारा पेड़ के मीठेपन के स्वाद का ज्ञान होना मतिज्ञान है फिर चखने वाले के लिए उसके सुखदाई या दुखदाई होने का ज्ञान होना श्रुतिज्ञान है। भंवरे को सुगंधित फूल की खुशबू का आना मतिज्ञान है फिर उस खुशबू से खिचकर फूल की ओर आने की बुद्धि का होना श्रुतिज्ञान है। पतंगे की आंख से दीपक का जलना देखकर ज्ञान होना मतिज्ञान है, यह भासना कि दीपक हितकारी है या अहितकारी यह श्रुतज्ञान है। कानों के बाजे की आवाज का सुनना मतिज्ञान है, फिर यह जानना कि आवाज हारमोनियम की है, श्रुतिज्ञान हुआ। मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान प्रत्येक जीव के होता है, कोई भी जीव इन दोनों से बचा हुआ नहीं है। इतना जरूर है किसी जीव में यह ज्ञान ज्यादा

होते हैं और किसी में कम। निगोदिया जीव को एक अक्षर के अनन्तवें भाग अर्थात् नाममात्र ही ज्ञान होता है।

अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लिए हुए रूपी पदार्थ अर्थात् पुद्गल पदार्थ को या पुद्गल सहित अशुद्ध जीवों का वर्णन बिना इंद्रियों की सहायता आत्मिक शक्ति से जानना अवधि ज्ञान है। देव, नारकी और श्री तीर्थंकर भगवान के यह ज्ञान जन्म दिन से ही होता है, इस कारण इन तीनों के अवधिज्ञान को भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं, सैनी पंचेन्द्रिय जीव को जिसकी इन्द्रियां पूर्ण हों, किसी गुण के कारण अर्थात् किसी खास तप के बल से यदि अवधिज्ञान प्राप्त हो जावे तो उसको गुण प्रत्यय ज्ञान कहते हैं।

मनः पर्याय ज्ञान—दूसरे के मन में पुद्गल या अशुद्ध जीवों के सम्बन्ध में कभी जो विचार किया जा चुका है, या अब चल रहा है या आगे कोई विचार होगा, उस सबको आत्मा द्वारा जानना मनः पर्यायज्ञान है। यह ज्ञान अवधिज्ञान से ज्यादह निर्मल है, यह ज्ञान बहुत सूक्ष्म बातों को जान सकता है, जिनको अवधि-ज्ञानी भी न जान सके। यह ज्ञान ध्यानी, तपस्वी सम्यक् दृष्टि महात्माओं तथा योगीश्वरों के ही होता है।

केवलज्ञान—यह ज्ञान को ढक देने वाले कर्म ज्ञानावरण के क्षय होने पर होता है, स्वाभाविक पूर्ण ज्ञान है, लोक अलोक की भूत, भविष्यत और वर्तमान सर्व वस्तुओं को और सर्व गुण पर्यायों को एक साथ जानने वाला है, इस ज्ञान में किसी वस्तु का जानना बाकी नहीं रहता है यह ज्ञान एक बार प्रकाश होने पर फिर मलीन होता नहीं सदा ही अपने शुद्ध स्वभाव में प्रकट रहता है। यह ज्ञान अर्हन्त परमेष्ठी तथा सिद्ध परमेष्ठी में प्रगट चमकता रहता है। संसारी जीवों में यह प्रकट नहीं होता, शक्तिरूप से रहता है।

इन ऊपर बताए पांचों ज्ञानों में से, अवधि, मन पर्यय और केवल यह तीन ज्ञान इन्द्रियों के सहारे बिना आत्मिक शक्ति के बल से साक्षात् रूप होते हैं इसलिए इनको प्रत्यक्ष कहते हैं और मतिज्ञान और श्रुतिज्ञान ये दो ज्ञान मन और इन्द्रियों के द्वारा होते हैं, इसलिए इनको परोक्ष कहते हैं।

इन ज्ञानों में श्रुतिज्ञान ही एक ज्ञान है जिससे शास्त्र ज्ञान होकर आत्मा का भेद विज्ञान होता है। यह आत्मा कर्मों से भिन्न है, सिद्ध परमेष्ठी के समान शुद्ध है। जिसको आत्मानुभव हो जाता है वही भाव श्रुति ज्ञान को पा लेता है। मन पर्यय ज्ञान और

अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थों को ही जानते हैं, श्रुति ज्ञान अरूपी पदार्थों को ही जान सकता है। श्रुत ज्ञान के बल से केवलज्ञान हो सकता है। इसलिए श्रुत ज्ञान प्रधान है। ऐसा जानकर हमें चाहिये कि शास्त्र ज्ञान का अभ्यास करते रहें, जिससे आत्मानुभव मिले ये ही सहज सुख का साधन है, ये ही केवलज्ञान का प्रकाशक है। जिनवानी को खूब पढ़ना चाहिए यह पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को बताने वाली है, पूर्वापर विरोध रहित है, शुद्ध है, विशाल है, अत्यन्त दृढ़ है, अनुपम है, प्राणीमात्र की हितकारिणी है और रागादि मल को हरण करने वाली है। इसके पठन पाठन से आत्महित का बोध होता है, सम्यक्त्व आदि गुणों की दढ़ता होती है, नया २ धर्मानुराग बढ़ता है, धर्म में निश्चलता होती है, तप करने की भावना होती है। उपदेश देने की योग्यता आती है—परम्पराय से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करा परमपद को प्राप्त कराने वाली है।

प्रश्नावली

१. ज्ञान के मुख्य भेद कितने हैं? उनके नाम बताओ।

२. मिथ्यादृष्टि के कौन से ज्ञान हो सकते हैं?

३. मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान का स्वरूप समझाओ। इन दोनों में से पहले कौनसा ज्ञान होता है?

४ निगोदिया जीव के कितना ज्ञान कम से कम होता है ?

५ अवधिज्ञान से आप क्या समझते है ?

६ भवप्रत्यय अवधि और गुणप्रत्यय ज्ञान की व्याख्या करो ।

७. मन पर्यय ज्ञान किसे कहते है ?

८ केवल ज्ञान का स्वरूप बताओ ?

९. प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ? और परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं । कौन २ से ज्ञान प्रत्यक्ष है और कौन २ से परोक्ष है ?

१०. श्रुत ज्ञान मे क्या विशेषता है ?

सम्यक्ज्ञान की महिमा

इस जगत में जीवों को सुख देने वाला ज्ञान के बराबर और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, यह ज्ञान उत्तम अमृत के समान है । इस ज्ञानामृत के पीने से ही जन्म, जरा और मृत्यु, जो एक संसारी जीव के लिए भयानक रोग है, दूर हो जाते हैं । ज्ञान के बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव एक क्षण मात्र में अपने मन, वचन, काय को रोक करके सहज में नाश कर देता है । इस जीव ने अनन्त बार मुनि-व्रत धारण किया और ग्रैवेयक विमानों में भी गया, परन्तु आत्मज्ञान न होने के कारण इसे जरा भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई ।

सम्यक्ज्ञान के अभ्यास से राग द्वेष मोह गिरता है, समताभाव जागृत होता है, आत्मा में रमण करने का उत्साह बढ़ता है, सहज सुख का साधन बन जाता है, स्वानुभाव जागृत हो जाता है, परम धैर्य प्रकाश माना जाता है, यह जीवन परम सुन्दर सुवर्णमय हो जाता है ज्ञानाभ्यास के बिना कषायों कि मंदता नहीं होती, व्यवहार की मंदता नहीं होती, व्यवहार की शुद्धता, परमार्थ का विचार आगम की सेवा से ही होते है । सम्यक्ज्ञान ही जीवन का परम बन्धु है, ये ही उत्कृष्टधन है, परम मित्र है, सम्यक्ज्ञान ही अविनाशी धन है, स्वदेश में, परदेश में, सुख मे. आपदा में, सम्पदा में, परम शरणभूत सम्यक्ज्ञान ही है, यह एक स्वाधीन, अविनाशी धन है । पांचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर विनय भक्ति सहित ज्ञान की भावना करने से आत्म कल्याण होता है, मनुष्य जन्म का सार भी ये ही है कि सम्यक्ज्ञान की भावना की जावे और अपनी शक्ति को न छिपाकर संयम को धारण किया जावे, आत्मकल्याण के चाहने वालों के लिए जरूरी है कि वह ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा सदा ज्ञान का मनन करते रहें और तप की रक्षा करे, जिसके हृदय में ज्ञान सूर्य का उजियारा प्रकाशमान

रहता है, उसके हृदय में मोहरूपी घोर अन्धकार टिकने नहीं पाता। धन्य हैं वे पुरुष जिनका जन्म गुरु की सेवा में बीतता है, जिनका मन धर्म ध्यान में लीन रहता है, जिनका शास्त्र अभ्यास साम्यभाव की प्राप्ति के लिए काम आता है। स्वाध्याय करते समय पांचों इन्द्रियाँ वश में होती हैं, मन, वचन, काय स्वाध्याय में रत हो जाते हैं, ध्यान एकाग्रता होती है, विनय गुण की वृद्धि होती है, स्वाध्याय या ज्ञानाभ्यास परम उपकारी है। शास्त्र का अभ्यासी पुरुष प्रमाद का दोष होते हुवे भी संसार में पतित नहीं होता, अपनी रक्षा करता है, ज्ञान बड़ी अपूर्व वस्तु है। वे ही मुनिराज मोक्ष पद के स्वरूप को जानने वाले हैं जो जिनवाणी को रुचिपूर्वक अपने कानों से सुनते हैं जो प्रमाण और नय के ज्ञाता हैं और जिनकी बुद्धि विशाल है। वास्तव में सम्यक्ज्ञान की महिमा विचित्र है। इसलिए जिनेन्द्र भगवान के कहे हुवे तत्वों और शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए। संशय, विभ्रम और विमोह इन तीनों दोषों को छोड़कर आत्मा को पहचानना चाहिए। वह नर भव, उत्तम कुल तथा जिनवाणी का सुनना जो पुण्योदय से इस समय मिला है, यदि वैसे ही व्यर्थ में बीत गया तो फिर इनका मिलना ऐसा ही कठिन है जैसे समुद्र में गिरे हुवे रत्न का मिलना कठिन है।

धन, समाज, हाथी, घोड़ा, राज्य आदि कोई अपने आत्मा के काम नहीं आता है । ज्ञान को आत्मा का स्वरूप है, उसी के प्रकाशित होने पर आत्मा निश्चल रहता है, उस आत्म ज्ञान का कारण अपना और परका भेद विज्ञान है, इसलिए हे भव्य जीवो ! करोड़ों उपाय करके भी जिस तरह बने उस भेद विज्ञान को प्राप्त करो । मुनियों के नाथ जिनेन्द्र भगवान ने फर्माया है जितने पहले मोक्ष गये, अब जाते हैं और आगे जावेंगे, उन सबके लिए ज्ञान का प्रभाव ही कारण जानना चाहिये । पंचेन्द्रियों को दाह एक धधकती हुई अग्नि के समान है, संसार के लोग बन के समान हैं उन्हें यह अग्नि भस्म किये जा रही है, ऐसा अग्नि को शान्त करने का उपाय सिवाय ज्ञान रूपी मेघों की वर्षा के और कोई दूसरा नहीं है । हे भव्य जीवो ! धनादि पुण्य के फल हैं, उन्हें देखकर हर्ष मत करो तथा रोग वियोग आदि को पाप का फल जान कर शोक मत करो । यह पाप पुण्य पुद्गल रूप कर्म की पर्यायें है, जो पैदा होकर नाश को प्राप्त हो जाती है और फिर पैदा हो जाती हैं । सारांश यह है और लाख बातों की बात यह है और तुम उस पर निश्चय लाओ कि जगत् के सब द्वन्द्व फन्द तोड़ कर ज्ञान का उपार्जन करो और आत्म ध्यान का अभ्यास करो ।

सम्यग्ज्ञान पापरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है, मोक्षरूपी लक्ष्मी के निवास के लिए कमल के समान है, मन रूपी सर्प को कीलने के लिए मन्त्र के समान है, मन रूपी हाथी को वश करने के लिए दीपक के समान है और पांचों इन्द्रियों के विषयों को पकड़ने लिये जाल के समान है।

प्रश्नावली

१. ज्ञानी और अज्ञानी की बातों में कुछ अन्तर है या नहीं ? यदि है तो क्या ?

२. सम्यग्ज्ञान की महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।

३. संशय, विभ्रम और विमोह से आप क्या समझते हो ?

४. प्रमाण और नय से क्या समझते हो ?

५. शास्त्राभ्यास का फल क्या है ?

६. भेद विज्ञान किसे कहते हैं ?

७. आत्म कल्याण के लिए भेद विज्ञान क्यों जरूरी है ?

८. ज्ञान का उपार्जन और आत्म ध्यान का अभ्यास जीव के लिए क्यों जरूरी है ?

बारह भावना

(भूधरमल जी कृत - चाल चन्द १४ मात्रा)

अनित्य भावना

राजा राना छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी २ बार ॥
अपनी अपनी बार, सभी को जाना होगा।
कर्मों के अनुसार गति को पाना होगा ॥

सरवस लूटे तुम्हें मोह ने कीन्हा अन्धा ।
मोह वली कर नाश बने फिर तेरा धंधा ॥
सतगुरु के सुन वैन ज्ञान प्रकटावे चन्दा ।
कर्म आस्रव सके छोड़ दे आलस गंदा ॥७

संवर भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर घर सोधे भ्रम छोड़ ।
या विधविन निकसे नहीं पैठे पूरब चोर ॥
पैठे पूरव चोर ज्ञान का दिया जलाओ ।
तप का कर लो तेल चोर को तुरत खपाओ ॥
पिछले हैं जो कर्म उन्हें जल्दी से खपाओ ।
नए न आने पाय रास्ता बन्द कराओ ॥८

निर्जरा भावना

पंच महाव्रत संचरन समिति पंच पर कार ।
प्रबल पंच इन्द्री विजय धार निर्जरा सार ॥
धार निर्जरा सार सार है यह ही भैया ।
पंच इंद्रिय मन वश करो यही पार लगैया ॥
जो इनके वश पड़े नरक में देह पठैया ।
सतगुरु की यह सीख मानले मेरे भैया ॥९

लोक भावना

चौदह राजु उतंग नभ लोक पुरुष संठाण ।
तामें जीव अन्तादितें भरमत है विन ज्ञान ॥

भरमत है बिन ज्ञान चौरासी लख में।
कभी सुरग में गया, कभी फिर गया नरक में।।
यों ही भरमता रहा सदा भटका भव वन में।
अब तो हो होश्यार नहीं फिर पड़े नरक में।।१०

धर्म भावना

जांचे सुर तरु देत सुख चिंतत चिंता रैन।
बिन जांचे विन चितये धर्म सकल सुखदेन।।
धर्म सकल सुखदेत धर्म भव भव में सहाई।
धर्महीन नर पड़ें बीच नरकों के माहीं।।
जनम मरण दुख जाय धर्म को जो मनलाई।
सुर नर हाय परम पद मुक्ति लहाई।।११

बोधि दुर्लभ भावना

धन कन कंचन राज सुख सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में एक जथारथ ज्ञान।।
दुर्लभ होवा ज्ञान ज्ञान बिन मोक्ष न होवे।
मिला जिन्हें है ज्ञान उन्हें शिव सुन्दरि जोवै।।
खुशरंग कहत पुकार ज्ञान गुण जबही होवें।
अष्ट कर्म जल जाय तपस्या ऐसी होवै।।१२

प्रश्नावली

१. भावना किसे कहते है ? ये कितनी है ? उनके नाम बताओ।
२. भावनाओं का चिन्तवन कौन करते है ? इनके चिन्तन में क्या लाभ है ?
३. एकत्व और अन्यत्व भावना मे क्या भेद है ?

४. अशुचि भावना, निर्जरा भावना और धर्म भावना के छन्द सुनाओ।

५. आस्रव और संवर भावना का स्वरूप बताओ।

६. इन भावनाओं के रचयिता कौन हैं ? ये भावनाएँ किन पुस्तक से ली गई है ?

त्याग

प्रभु आदिनाथ की नर-नारी ही नहीं, देवी देवता भी वन्दना करने आया करते थे। विश्व को पिता के चरणों पर झुका हुआ देख प्रभु की दोनों कन्यायें ब्राह्मी और सुन्दरी आत्म सुख अनुभव करती थीं। अभी उम्र की वे छोटी थीं और पिता को ही सर्वस्व समझती थीं। समझती क्यों नहीं भला इनसे भी महान् और कोई होगा, देवता तक जिनकी वन्दना करते हैं। समय तो रुकता नहीं आया और बीत गया कि एक दिन सरल स्वभाव पिता से पूछने लगीं, 'पिताजी ! आपसे भी अधिक पूज्य कोई है ?'

प्रभु थोडी देर मौन रहे, फिर बोले—'हां हैं।'

पुत्रियों को पिता के उत्तर में आस्था लाने में यत्न लगा, उन्हें रह रहकर आज क्यों पिता के ये वाक्य गंभीर लगने लगे, तो आगे प्रश्न किया—'पिता जी ! वे कौन हो सकते हैं ? जो आपसे भी पूज्य हैं, या आप हमें छोटा अल्पज्ञ समझ हमारी आत्म-तुष्टि नहीं करना चाहते ?'

प्रभु ने कहा—'जिससे तुम्हारा विवाह होगा, वे हमारे पूज्य होंगे।' अब संशय का कोई स्थान नहीं। पुत्रियों को आदत नहीं कि पिता से भी अधिक किसी को पूज्य समझें पर वे मानव हैं, उनमें आज अन्तर्द्वन्द्व मचा है। एक ओर पिता का जगत् पूज्यत्व और एक ओर समस्त जीवन का सुख वैभव।

ब्राह्मी ने सुन्दरी और सुन्दरी ने ब्राह्मी की ओर देखा—देखा जैसे दोनों की आंखों ने कहा—'उन्हीं के द्वारा पिता का विश्व वंद्यत्व नष्ट होगा ?' वे अपने और दूसरे के हृदय की थाह लेने लगीं।

उसी पल उन्होंने निश्चय किया और प्रभु के चरणों में नत होकर बोलीं—'पर पिताजी, हम तो दीक्षा लेने जा रही हैं' और वे आर्यिका हो गईं। प्रभु कन्याओं के त्याग पर मुस्करा दिये।

(अक्षयकुमार की भा. दि. जैन धर्म कथाएं)

प्रश्नावली

१. ब्राह्मी और सुन्दरी ने अपने पिता जी श्री ऋषभदेव भगवान से क्या पूछा ? और भगवान ने क्या उत्तर दिया ?
२. अन्तर्द्वन्द्व का क्या अर्थ है ?
३. पिताजी का उत्तर सुनकर ब्राह्मी और सुन्दरी ने क्या निश्चय किया और क्यों किया ?
४. इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

बाहुबली

सेठ धर्मचन्द एक बड़े बुद्धिमान तथा सुशिक्षित थे। उन्होंने अपने बड़े कमरे में बहुत से सुन्दर दृश्यों के चित्रों के साथ दूसरे बहुत से महापुरुषों तथा वीरों के चित्र लगाए हुए थे। इससे उनके कुटुम्ब वालों को उनसे जानकारी तथा शिक्षा प्राप्त हो। कभी-कभी वे स्वयं हर एक चित्र की विशेषतायें या महापुरुषों के जीवन के सम्बन्ध में अपने बेटे बेटियों को बताया करते थे। वे बाजार से बाहुबली स्वामी का बड़ा चित्र लाये जो एक बहुत ही सुन्दर चोखटे में जड़ा था। चित्र का घर में आना था कि उनकी लड़की उर्मिला और लड़का सुरेन्द्र उनके पास आ गये। वे उस चित्र को देख कर बड़े प्रसन्न हुए, पर उन्हें बाहु-बली के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान न था। इसलिये उनकी जिज्ञासा बढ़ गई और उर्मिला झट से पूछ बैठी—"पिता जी यह चित्र किस साधु का है ?"

धर्मचन्द—यह बाहुबली स्वामी का चित्र है।

सुरेन्द्र—ये बाहुबली कौन थे ? इनका नाम तो हमने कभी नहीं सुना। इनका जीवन वृत्तान्त सुना-इये।

धर्मचन्द—हमारे देश में प्रसिद्ध तथा पराक्रमी वीर

राजा महाराजा हुए हैं परन्तु उनमें से ऐसे कम मिलेंगे जिन्होंने अपना राज पाट छोड़ कर त्याग और तपस्या का जीवन बिताया हो।

उर्मिला—तो क्या ये बाहुबली पहले राजा थे, ये किसके पुत्र थे।

धर्मचन्द–हां, ये राजा थे। इनके पिता का नाम महाराजा ऋषभनाथ था वे दामोदर के राजा थे और उनके यशस्वती और सुनन्दा नाम की दो रानियां थीं। महारानी यशस्वती के पुत्र का नाम भरत था। सुनन्दा के बड़े पुत्र का नाम बाहुबली था। पिता राजपाट छोड़कर साधु बन गये और उनके चले जाने पर उनके लड़कों ने राज्य का काम सम्भाला। भरत अयोध्या के राजा बने और बाहुबली पोदनापुर के। दूसरे भाईयों को और राज्य मिले।

सुरेन्द्र–फिर बाहुबली ने राजपाट क्यों छोड़ दिया ?

धर्मचन्द—जरा ठहरो, मैं तुम्हें यही बात बताने वाला हूं। भरत के मन में चक्रवर्ती राजा बनने की बात आई। झट से उन्होंने एक-एक करके दूसरे सभी राजाओं को जीत लिया पर चक्रवर्ती बनने के लिए उन्हें अपने भाईयों को भी जीतना आवश्यक था। भरत के दूसरे भाई तो भरत से लड़े नहीं, उन्होंने

अपना राज्य छोड़ दिया और साधु बन गए। पर बाहुबली बड़े वीर थे और किसी प्रकार भी भरत से कम न थे। उन्होंने भरत को कह कर भेजा, "लड़ कर हमारा राज्य ले सकते हो वरना नहीं।"

सुरेन्द्र—यह तो उन्होंने ठीक ही किया। ज्यादती भरत की ही थी फिर क्या हुआ ?

धर्मचन्द–फिर क्या था। दोनों तरफ लड़ाई की तैयारी होने लगी पर इससे दोनों राजाओं के मंत्रियों को बड़ी चिंता हुई।

उर्मिला—वह चिंता क्या थी।

धर्मचन्द—वे नहीं चाहते थे कि दोनों भाईयों में युद्ध हो और सैनिक लोग मारे जाँय। वे युद्ध को टालना चाहते थे।

उर्मिला – युद्ध टालना तो अच्छी बात है, पर बिना युद्ध के भरत चक्रवर्ती कैसे बनते।

धर्मचन्द—दोनों भाईयों के मंत्रियों ने अपनी बुद्धिमानी से ऐसा मार्ग निकाला कि न एक सैनिक मरे, न भरत या बाहुबली मरें। पर दोनों भाईयों में से एक की हार जीत हो जाय। मंत्रियों ने हिंसा-पूर्ण युद्ध को टालकर अहिंसामय युद्ध का रूप दे दिया।

सुरेन्द्र—यह तो आप बड़ी विचित्र बात सुना रहे

है। युद्ध और अहिंसात्मक। यह कैसे हुआ ?

धर्मचन्द—उन्होंने तय किया कि सब मंत्रियों के सामने भरत बाहुबली पहले दृष्टि युद्ध करें, फिर जल युद्ध करें और फिर कुश्ती करें। जो इनमें जीत जाय वह विजयी माना जावेगा।

उर्मिला—यह तो उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी का मार्ग निकाला इससे सचमुच लाखों सैनिकों की जान बच गई और राज्य विनाश से बच गया फिर क्या हुआ ?

धर्मचन्द—मंत्रियो और सैकड़ों दर्शकों के सामने पहले भरत और बाहुबली ने एक दूसरे से दृष्टि युद्ध किया। दृष्टि युद्ध में आंखें बन्द किए बिना एक दूसरे की तरफ देखते रहना पड़ता है जो पहले आंख बन्द कर लेता है, वह हार जाता है। बाहुबली उसमें जीत गया। फिर दोनों ने तालाब में घुस कर एक दूसरे पर जल फेंका। इसमें भी भरत हार गया। फिर अन्त में दोनों लंगर लंगोटे कस कर कुश्ती के लिए अखाड़े में कूद पड़े। दोनों में बड़ी देर तक कुश्ती हुई। दोनों ने खूब दांव पेंच लगाये पर कोई किसी को चित्त न गिरा सका। दोनों थक कर चूर हो गए। अन्त में बाहुबली ने ऐसा दांव चलाया कि भरत को अपने दोनों हाथों में अपने सिर पर उठा

लिया। यदि बाहुबली चाहता तो भरत को धरती पर चित्त डालकर उसकी छाती पर चढ़ बैठता।

सुरेन्द्र- तब तो बड़ा अच्छा होता। भरत की समस्त विजयें मिट्टी में मिल जातीं।

धर्मचन्द—पर बाहुबली अपने बड़े भाई का अपमान करना नहीं चाहते थे। बाहुबली ने बड़े भाई को अपने कंधों पर बिठा लिया और विजयी हो गये।

सुरेन्द्र—फिर क्या हुआ ?

धर्मचन्द—भरत और उसके मंत्री बड़े लज्जित हुए। पर भरत के मन में एक अनीतिपूर्ण चाल पैदा हुई। उसने अपना चक्र उठाया और बाहुबली पर चला दिया।

उर्मिला—यह तो सचमुच भरत ने बुरा किया। उसका यह काम तो बड़ा निंदनीय था। फिर बाहुबली ने क्या किया ?

धर्मचंद—भरत के इस अनीतिपूर्ण काम की सब ने निंदा की। इससे बाहुबली का मन संसार से विरक्त हो गया और साधु बन कर जंगल में चले गये। वहां घनघोर तप किया और वे संसार के सबसे श्रेष्ठ महापुरुष बन गये। भरत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने अपने कार्यों पर विजय

प्राप्त की।

सुरेन्द्र—यह उनके चित्र पर बेलों के चिन्ह कैसे हैं ?

धर्मचंद—तप करते-करते बाहुबली ध्यान में ऐसे लीन हुए कि बेलें उनके शरीर पर चढ़ गईं। सांपों ने घुटनों से ऊपर तक मिट्टी की बांबी बना लीं। पर बाहुबली को इन सब बातों का पता भी न हुआ। उनके तप से बन में चारों तरफ शान्ति ही शान्ति फैल गई। पर—

सुरेन्द्र—पर क्या पिता जी ?

धर्मचन्द—पर उनके मन में अभी एक छोटा सा विचार कांटा बनकर चुभ रहा था। उनके द्वारा उनके भाई भरत को कष्ट पहुंचा यह विचार उन्हें दुःख दे रहा था।

उर्मिला—क्या उनका दुःख दूर हो गया ?

धर्मचंद—हां, बाहुबली के तप की बात सुनकर भरत उनके दर्शन को आये। उन्होंने बाहुबली की परिक्रमा की और उन्हें नमस्कार किया। बस फिर उनके मन की पीड़ा दूर हो गई और उन्होंने कैलाश पर्वत पर तप करके वहां से मोक्ष प्राप्त किया।

सुरेंद्र—क्या इस महापुरुष का हमारे देश में कोई स्मारक भी है ?

धर्मचंद—भरत ने अपने भाई की याद में पोदन पुर में एक बहुत बड़ी, सुन्दर और मूल्यवान मूर्ति बनवाई। पर बाद में वह मूर्ति लोप हो गई। एक हजार वर्ष हुए दक्षिण के एक वीर योद्धा तथा मन्त्री चामुण्डराय ने विंध्यागिरि पर्वत पर श्रवण बेल गोल के स्थान पर ५७ फुट ऊंची एक पत्थर में से काट कर बाहुबली की सुन्दर मूर्ति बनवाई। भारत की प्राचीन कला का यह महान नमूना है। सहस्रों जैनी तथा दर्शक आज भी प्रतिवर्ष उस विशालकाय मूर्ति को देखने आते हैं। ऐसे महान थे बाहुबली। संसार में वीरता, त्याग और तप के महान आदर्श थे।

सुरेंद्र और उर्मिला—पिता जी, इतने बड़े महापुरुष का जीवन सुनाने और चित्र लाने के लिए आपका बहुत धन्यवाद। हम इनके चित्र को देखकर अपने को पुण्यवान समझते हैं।

हाथी कैसा ?

एक दिन एक गांव में एक हाथी आया। वहां के स्त्री-पुरुष तथा बालक बालिकायें सभी उसे देखने खुशी-खुशी वहां आये। हाथी गांव के निवासियों के लिए एक नया और अद्भुत पशु था। इसलिए सबने

उसे इतनी प्रसन्नता से इधर उधर घूम कर देखा जैसे कि आजकल के ग्रामीण हवाई जहाज को देखते हैं।

उस गांव में पांच अंधे पुरुष भी रहते थे। उन्होंने हाथी का तो नाम सुना था, पर उसे देखा कभी न था। जब उन्होंने लोगों से गांव में आये हुए हाथी का हाल सुना तब उनको भी उसे देखने की इच्छा हुई, पर वे उसे कैसे देखते ? उन्हें इस बात का बड़ा खेद था कि गांव में आये हुए हाथी को भी वे अपने अंधेपन के कारण न देख सके। उनका खेद सच्चा था, पर विवशता भी बड़ी थी। आखिर उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने हाथी को अपने हाथों से टटोल कर तथा छू कर उसके आकार के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का निश्चय किया। किसी आदमी को साथ लेकर वे अन्धे आदमी हाथी को देखने के लिए गए।

वे अन्धे आदमी हाथी के पास गए और उन्होंने उसके विशाल शरीर के भिन्न २ अंगों को छूकर तथा टटोल कर देखा। एक ने उसके सूंड को टटोला। दूसरे ने उसके कानों को। तीसरे ने उसकी पूंछ पर हाथ फेरा तो चौथे ने खम्बे के समान उसके पैरों पर हाथ फेरे और पांचवें ने उसकी कमर तथा

पेट के बीच के भाग पर अपने हाथ फेरे।

इसके बाद वे पांचों अन्धे इकट्ठे बैठकर अपने २ ज्ञान के अनुसार हाथी का वर्णन करने लगे। सूंड को छूने वाले ने हाथी को वृक्ष की बल्ली के समान बताया तो कानों को छूने वाले ने उसे छाज के समान बताया। तीसरे अन्धे ने कहा, "नहीं, हाथी तो सांप के समान लम्बा होता है।" टांगों पर हाथ फेरने वाले अन्धे ने उसे खम्बे के समान बताया और पांचवें ने उसे एक दीवार के सदृश बताया। इस पर उनमें बाद-विवाद बढ़ गया और झगड़े तक की नौबत आ गई। सब अपनी-अपनी बात पर अड़े हुवे थे एक भी दूसरे की बात मानने को तैयार न था।

इतने में गांव का एक बुद्धिमान बड़ा आदमी वहां आ गया। उसने उनकी बात को सुना, तो वह असली बात समझ गया। इस पर उसे खेद भी हुआ और हंसी भी आयी कि उनमें से हर एक अन्धा अपने अनुमान में सच्चा भी है और गलत भी। तब उसने उन्हें समझाया "तुम सबने हाथी के शरीर के एक-एक अंग को देखा है, और उस उस अंग के वर्णन तथा तुलना में तुम सब सच्चे हो, पर पूरे हाथी का वर्णन तो तभी पूरा होगा जब तुम अपने वर्णनों को जोड़ कर पूरा करोगे। इसलिए तुम्हारा हर एक वर्णन

सच होते हुए भी अधूरा है, गलत है। हर एक वस्तु या बात के सब पक्षों या पहलुओं को समझने से ही उसके बारे में ठीक तथा पूरा ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं।"

उन अन्धे आदमियों को उस बुद्धिमान बूढ़े आदमी की बात समझ में आ गई और अपनी भूल मालूम हुई।

इसी तरह हमारे हर दिन के व्यवहार में भी छोटी छोटी बातों पर होने वाले झगड़े अपने साथियों के दृष्टिकोण को समझने से आसानी से दूर हो सकते हैं।

प्रश्नावली

१. हर एक अन्धे आदमी ने हाथी को कैसा-कैसा समझा ?
२. वे अन्धे आदमी हाथी के वर्णनके बारे मे क्यो झगड़ रहे थे ?
३. इस कहानी मे हमे क्या शिक्षा मिलती है ?
४. इस कहानी को सक्षेप मे अपने शब्दों मे लिखो।

सम्यक् चारित्र

अपने शुद्ध भावों में मग्न रहने का नाम निश्चय चारित्र है और इस अवस्था को प्राप्त होने का जो कारण है वह व्यवहार चारित्र है। यदि कोई केवल व्यवहार चारित्र को ही पाले और उसके द्वारा निश्चय सम्यक् चारित्र को प्राप्त न कर सके तो वह पूर्ण चारित्र नहीं कहलाएगा, जैसे कोई व्यापारी वाणिज्य तो बहुत करे और धन का लाभ नहीं कर सके तो उसके व्यापार को यथार्थ व्यापार नहीं कहा जायेगा।

यह व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है। एक सकल चारित्र या साधु का चारित्र दूसरा विकल या श्रावक का चारित्र।

संसारी प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों के वशीभूत होकर रागी, द्वेषी होता हुआ अपने अपने स्वार्थ साधन के लिए पांच प्रकार के पाप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह को किया करता है। इन ही पांच पापों का पूर्ण रूप से त्याग करना, साधु का चारित्र है। इन ही के पूर्ण त्याग को महाव्रत कहते हैं, इन ही की दृढ़ता के लिए पंच समिति तथा तीन गुप्ति का पालन किया जाता है। इसीलिए पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति

इनको मिलाकर तेरह प्रकार का चारित्र मुनिका कहा गया है। इनमें पंचमहाव्रत मुख्य है। यद्यपि महाव्रत पांच बताए गये हैं, परन्तु एक अहिंसा महाव्रत में सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत गर्भित है। झूठ बोलने से, चोरी करने से, कुशील भाव से तथा परिग्रह की तृष्णा से आत्मा के गुणों का घात होता है, इसलिए वे सब हिंसा के ही भेद हैं। जहां हिंसा का पूर्ण त्याग है, वहां झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन चारों का भी त्याग स्वयं हो जाता है।

इन पापों का पूर्ण रूप से त्याग किये बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इस तेरह प्रकार के चारित्र का पालन मुनिराज किया करते है।

इसके अतिरिक्त मुनिराज पाँचों इन्द्रियों को जीतते हैं। पांचों इन्द्रियों के विषय में राग, द्वेष नहीं करना, पंच इन्द्रिय विजय है।

मुनिराज छह आवश्यक का नित्य प्रति पालन किया करते है। सामायिक करते हैं, अर्हन्त भगवान् की स्तुति करते है, जिनेन्द्र प्रभु की वन्दना करते हैं, प्रतिक्रमण अर्थात् लगे हुए दोषों को दूर करने के लिए पश्चाताप करते हैं, कायोत्सर्ग करते हैं, अर्थात् शरीर से ममत्व त्यागते हैं और खड़े होकर ध्यान

लगाते हैं ।

इस प्रकार पंच महाव्रत, पंचसमिति, पंच इन्द्रिय विजय, छह आवश्यक, स्नान नहीं करना, दांत नहीं धोना, नग्न रहना, जमीन पर सोना, एक बार दिन में भोजन करना, हाथों का ही पात्र बनाकर उसमें खड़े-खड़े आहार लेना, अपने हाथ से अपने बालों का लोच करना, यह कुल मिलाकर साधुओं के २८ मूल गुण होते हैं, जो साधुओं में होने चाहिएँ, जैसे मूल के बिना वृक्ष टिक ही नहीं सकता, वैसे ही इन गुणों के बिना साधु हो नहीं सकता, इसलिए इनको साधुओं के २८ मूल गुण कहा गया है।

मुनिराज वीतरागी निःस्पृही होते हैं, उनके लिए शत्रु, मित्र, महल, मशान, सोना और कांच, निंदा और स्तुति, पूजन करना या तलवार से प्रहार करना ये सब समान हैं। वे परम समता भाव के धारक होते हैं, हर अवस्था में सदा शान्त चित्त रहते है।

मुनिराज अनशन, ऊनोदार, वृत परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और काय क्लेश इन छह बहिरंग के तप को तथा प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान इन छहों अन्तरंग के तप को कुल मिलाकर बारह प्रकार के तप को साधन करते हैं। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, उत्तम

सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम त्याग, उत्तम तप, उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य, दशलक्षण धर्म का पालन करते हैं। सदा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं। वे कभी दूसरे मुनिवर के साथ या कभी अकेले विहार करते हैं और स्वप्न मात्र में भी संसार के विनाशीक सुख की इच्छा नहीं करते।

यह मुनि का सकल चारित्र वर्णन किया। निश्चय चारित्र से अपने आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रगट होती है और पर वस्तु से सर्व प्रकार की प्रवृत्ति मिट जाती है। जब मुनिराज स्वरूपाचरण के समय आत्मस्वरूप में लीन होने के समय भेद ज्ञान रूपी बहुत तेज छैनी से अपने अन्तरंग का परदा तोड़कर और शरीर के वर्ण आदि बीस गुणों और राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि भावों से अपने आत्मीक भाव को जुदाकर अपने आत्मा में अपने आत्म हित के लिए अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को आप ही ग्रहण करते हैं, तब गुण-गुणी, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय में कुछ भी भेद नहीं रहता अर्थात् एक ऐसी ध्यानमय अवस्था हो जाती है जिसमें ये सब एक हो जाते हैं सब संकल्प मिट जाते हैं। उसे ध्यान की अवस्था में न ध्यान का, न ध्याता का और न ध्येय का कोई भेद है और न वचन से

कहने योग्य ही इनमें भेद है, उसमें तो चेतना भाव ही कर्म, चेतना ही कर्त्ता और चेतना ही क्रिया है, यहां कर्त्ता, कर्म, क्रिया, भाव बिल्कुल जुदा नहीं है। पृथक् हैं। यहां तो शुद्ध भाव की स्थिर अवस्था है, जिसमें दर्शन ज्ञान, चारित्र भी एक रूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं।

इस प्रकार विचार करते करते मुनिराज जब आत्म-ध्यान में लीन हो जाते हैं, तो उन्हें जो अकथनीय आनन्द उस समय प्राप्त होता है, वह आनन्द न इन्द्र को मिलता है, न अहमिन्द्र को मिलता है, न चक्रवर्ती और नागेन्द्र को प्राप्त होता है।

उस समय वे शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्म रूपी बन को भस्म कर केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं और उसके द्वारा तीनों काल की बातों को हाथ में रखे हुए आंवले की तरह जानकर भव्य पुरुषों को मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हैं, यह उनकी अरहन्त अवस्था कहलाती है। इसके बाद वे आयु, नाम, गोत्र और वेदनी इन चारों अघातियां कर्मों को भी क्षण भर में क्षय करके मोक्ष को चले जाते हैं। इस आनन्दमय सिद्ध अवस्था के पाने का कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेद रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। भव्य जीवों को आलस्य छोड़कर इन्हें ग्रहण करना चाहिये, जिन विषय

कषायों को हमेशा से सेवन किया उनसे मन को हटा कर मोक्ष सुख पाने का उद्यम मनुष्य भव के सिवा और दूसरे भव में नहीं हो सकता। मनुष्य भव का पाना बड़ा ही कठिन है। एक बार ऐसा समय वृथा खो देने से फिर इसका मिलना बहुत ही दुर्लभ है इस लिए अब जो अमोलक अवसर प्राप्त हुआ है, उसे यूं ही न गँवाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होना ही परम कर्तव्य है।

प्रश्नावली

१. सम्यक् चारित्र किसे कहते है ?

२. निश्चय और व्यवहार चारित्र में क्या अन्तर है ?

३. व्यवहार चारित्र के कितने भेद है ? उनके नाम बताओ ?

४. सकल चारित्र से तुम क्या समझते हो ? इस चारित्र का पालन कौन करते है।

५. महाव्रत किसे कहते है ? महाव्रत कितने होते है उनके नाम बताओ।

६. समिति से आप क्या समझते है ? समिति कितने प्रकार की होती है ?

७. ईर्या समिति, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति से क्या समझते है ?

८. भाषा समिति और एषणा समिति का स्वरूप अपने शब्दों में समझाओ।

९. गुप्ति किसे कहते है ? गुप्तियां कितनी होती है ? उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

१०. मुनिराज के षट् आवश्यकों के नाम बताओ।

११. साधुओं के २८ मूल गुण बताओ।

१२. बारह प्रकार के तप के नाम बताओ।

१३. निश्चय चारित्र का कुछ स्वरूप अपनी सरल भाषा में समझाओ।
१४. क्या व्यवहार चारित्र निश्चय चारित्र के बिना कार्यकारी है ?
१५. क्या निश्चय चारित्र व्यवहार चारित्र के विना कार्यकारी है ?
१६. पंच इन्द्रिय विजय से क्या समझते हो ?
१७. दशलक्षण धर्म के नाम बताओ और उनका सक्षेप मे स्वरूप भी बताओ।
१८. रत्नत्रय किसे कहते है।
१९. तेरह प्रकार का चारित्र क्या है।
२०. सिद्ध अवस्था का कुछ वर्णन संक्षेप से अपने शब्दों मे करो।

विकल चारित्र या श्रावक धर्म

पहले बता चुके है कि व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का होता है। सकल चारित्र और विकल चारित्र का वर्णन तुम पहले भी धर्म शिक्षावली चतुर्थ भाग में पढ़ चुके हो।

जिन वचन श्रद्धानी, न्यायमार्गी, पाप से डरने वाले, ज्ञानी विवेकी गृह कुटुम्ब, धनादिक सहित गृहस्थियों के विकल चारित्र होता है—गृहस्थियों का चारित्र पंच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत, रूप तीन प्रकार के होता है। पंच अणुव्रत इस प्रकार है :—

(१) अहिंसा अणुव्रत—स्थावर जीवों को हिंसा का त्यागी न होकर त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है। इस अणुव्रत के पालने वाला स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाचारपूर्वक व्यवहार करता है।

इस व्रत का पालन करने वाला मनुष्य, पशु आदि जीवों के नाक, कान, पूंछ आदि अंगोपांग को नहीं छेदता, जीवों को बन्धनों से जकड़ता नहीं, बन्दी-गृह में रोकता नहीं, पक्षियों को पिंजरे आदि में रोक कर रखता नहीं। जीवों को लात, मुक्का, लाठी, चाबुक, कोड़ा आदि से मारता नहीं। पशुओ पर तथा मनुष्यों पर, गाड़ा गाड़ी पर उनकी शक्ति से अधिक बोझ लादता नहीं, अपने आधीन मनुष्यों, पशुओं तथा अन्य जीवों को खाना पीना न देकर भूखा प्यासा नहीं मारता।

(२) सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत को धारण करने वाला न तो आप झूठ बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से दूसरों पर आपत्ति आ जावे या अपवाद फैल जावे।

इस व्रत का धारक मिथ्या उपदेश नहीं देता, दूसरों के दोष प्रकट नहीं करता, विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं देता, झूठे जाली कागज तमस्सुक रसीद वगैरह नहीं बनाता, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता।

(३) अचौर्याणुव्रत--प्रमाद के वश होकर दूसरों

की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणु व्रत है ।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता अथवा राज्य आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, लेन देन के बाट, तराजू, गज आदि को कम ज्यदा नहीं रखता। लेने के बाट और देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया मिलाकर बढ़िया वस्तु में नहीं चलाता जैसे दूध में पानी मिलाकर असली के तौर बेचना ।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी बिबाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियों को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का बिवाह नहीं करता कराता, काम सेवन के अंगों को छोड़ कर अन्य अंगों द्वारा काम क्रीड़ा नहीं करता। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भंड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वेष नहीं बनाता, स्वांग आदि नहीं रचता और न ही स्त्रियों जैसी चेष्टायें करता, काम सेवन की तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्याभिचारणी स्त्रियों के घर आता जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाता है,

साथ कोई व्यवहार नहीं करता उनके रूप शृंगार को नहीं देखता।

(५) परिग्रह परिणाम अणुव्रत—जितने से अपने परिणामों में सन्तोष आजावे इतना परिग्रह का परिमाण करके उससे ज्यादा की इच्छा नहीं करना, परिग्रह परिमाण अणुव्रत है, इस व्रत का धारक आवश्यकता से अधिक सवारी नहीं रखता। जितने रखता है उनसे भी जरूरत से ज्यादा काम नहीं लेता, आवश्यकता से ज्यादा व्यर्थ ही सामान तथा चीजों को संग्रह नहीं करता, दूसरों की अधिक सम्पदा या विभूति को देखकर तथा जिन वस्तुओं को कभी देखा या सुना न हो उनको देखकर या सुनकर आश्चर्य नहीं करता अति लोभी नहीं होता है सन्तोषमय जीवन व्यतीत करता है अपने आधीन पशुओं तथा मनुष्यों पर उनकी शक्ति से अधिक भार नहीं लादता, न उनसे उनको सामर्थ्य से बाहर काम लेता है।

गुणव्रत - इन ऊपर लिखे पांचों अणुव्रतों को धारण करने के पीछे उन व्रतों में बढ़ोतरी करने के लिए तीन गुण व्रतों को धारण किया जाता है, वे तीन गुणव्रत ये हैं :—

(अ) दिग्व्रत—लोभ आरम्भ को कम करने के लिए जीवन भर के लिए दशों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना दिग्व्रत है।

इस व्रत के धारी ने जितनी ऊँचाई तक जाने का प्रमाण किया है उससे ज्यादा ऊँचाई पर नहीं चढ़ेगा, टेढ़ा जाकर मर्यादा से बाहर नहीं जावेगा। जितने क्षेत्र का परिणाम किया हुवा है उससे ज्यादा नहीं बढ़ावेगा, दिशाओं की बांधी हुई मर्यादा को भूलेगा नहीं।

(आ) देशव्रत—घड़ी, घंटा, दिन, पक्ष, महीना वगैरह नियत समय तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देशव्रत है।

इस वृत का पालन करते वाला मर्यादा से बाहर के क्षेत्र से न आप जाता है और न किसी को भेजता है, न मर्यादा से बाहर वाले क्षेत्र में रहने वाले को खांसी से, खंखार से, कोई और आवाज से, तार टेलीफून चिट्‌टी आदि द्वारा अपना अभिप्राय नहीं समझाता, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में हाथ-पांव मुंह आदि से किसी प्रकार का इशारा करके काम नहीं करता, कंकर पत्थर आदि फैंक कर मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में अपना इशारा नहीं पहुंचाता।

(इ) अनर्थ दण्ड विरति—ऐसे पाप कार्यों का त्याग करना जिससे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध न होता है, ऐसे व्यर्थ पाप पांच प्रकार के होते हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या।

व्यर्थ हिंसा के कार्यों का उपदेश देना पापोपदेश, है। हिंसा के औजार फावड़ा, कुदाल, पींजरा, जंजीर आदि माँगे देना हिंसादान है। यदि इस प्रकार की चीजें अपने लिए रखना जरूरी हो तो रखे, दूसरों को दान करता तो व्यर्थ का पाप ही है। बैठे बिठाये दूसरों की चुगली करना, बुराई करना, दूसरों को बुरा चाहना इत्यादि सब अपध्यान हैं इससे अपना तो कुछ हित होता नहीं, पाप बंध हो ही जाता है। राग द्वेष, काम क्रोधाधि को उत्पन्न करने वाली पुस्तकें, नावल किस्से, कहानियां पढ़ना, सुनना दुःश्रुति है। बिना प्रयोजन जल खिडाना, जमीन कुरेदना, फूल तोड़ना, अग्नि जलाना इत्यादि क्रिया करना, जिसमें हिंसा होती हो तथा बिना सावधानी के व्यर्थ इस प्रकार प्रवर्तना कि जिससे जीव हिंसा हो प्रमाद चर्या है। अनर्थ दंड त्याग व्रत का पालन करने वाला ऐसे कोई व्यर्थ के कार्य कदापि नहीं करता।

वह हंसी मजाक के भंड वचन नहीं बोलता, शरीर से भंड क्रिया तथा कुचेष्टा नहीं करता, व्यर्थ बकवास नहीं करता, बिना विचारे व्यर्थ ही जरूरत से ज्यादह अपने मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करता, इसमें शक्ति और समय का व्यर्थ में नाश होता है। बिना प्रयोजन जरूरत से ज्यादह भोगोपभोग की सामग्री संग्रह नहीं करता।

शिक्षाव्रत—गुणव्रतों को बढ़ाकर चार शिक्षा व्रत ग्रहण करने चाहियें इनसे चारित्र में अधिक उन्नति होती है। जिन व्रतों से मुनि धर्म की शिक्षा मिलती है अर्थात् अभ्यास होता है। उनको शिक्षा व्रत कहते है। ये शिक्षाव्रत चार है—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग, परिणाम व्रत और अतिथि संविभाग।

(क) सामायिक– समस्त पाप क्रियाओं से रहित होकर, सबसे राग द्वेष आदि परिणामों को दूर कर साम्य भाव को प्राप्त होकर आत्मस्वरूप में लीन होना सामायिक है।

इस व्रत का पालन करने वाला मन को, वचन को तथा काय को इधर उधर अन्यथा चलायमान नहीं होने देता, उत्साह रहित या अनादर से सामायिक नहीं करता, सामायिक करते हुए चित्त की चंचलता के कारण पाठ-जाप आदि को भूल नहीं जाता।

(ख) प्रोषधोपवास प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी के पहले दिन अर्थात् सप्तमी और त्रयोदशी के दो पहर से लेकर पारने के दिन अर्थात् नवमी और पन्द्रह के दिन के दो पहर तक समस्त आरम्भ छोड़कर विषय कषाय तथा और सब प्रकार के आहार का त्याग करके सारे समय को धर्म सेवन में व्यतीत करना प्रोषधोपवास है।

इस व्रत का धारक बिना शोधी भूमि पर मल,

मूत्र, कफ आदि नहीं डालता, बिना देखे, बिना शोधे उपकरणों को उठाता या रखता नहीं, बिना देखी, बिना शोधी भूमि पर सांथरा आदिक नहीं बिछाता, धर्म क्रिया को उत्साह रहित होकर नहीं करता, हर्ष पूर्वक करता है, आवश्यक क्रियाओं को सावधानता पूर्वक करता है भूल नहीं जाता।

(ग) भोगोपभोग परिमाणव्रत -भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा करके बाकी सबका त्याग कर देना। इस व्रत का पालन करने वाला पांचों इन्द्रियों के विषय को अपने लिए घातक समझता है, उनमें दिन प्रति दिन राग भाव को घटाता है, जो भोग पहले भोग चुका है उनको याद नहीं करता, जो भोग अब भोग रहा है उनमें आसक्त होकर लंपटता के साथ नहीं भोगता, आगामी काल मे भोगों को भोगने के लिए अति तृष्णा या लोलुपता नहीं रखता, वास्तव में विषय को न भोगते हुवे भी ऐसा विचार उसके दिल में नहीं आता कि मै भोग रहा हूं अर्थात् खयाल में भी भोगों को नहीं भोगता।

इस व्रत का धारक संयमी होता है, १७ नियमों को पालता है, सप्त व्यसन का त्यागी होता है, अभक्ष्य का त्याग करता है।

(घ) अतिथि संविभागव्रत फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर भाव से, धर्म, बुद्धि पूर्वक मुनि

त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना । जो साधु भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं और जिनके आने के लिए कोई समय या तिथि नियत नहीं है, उन्हें अतिथि कहते हैं । अपने कुटुम्ब के लिए बनाए हुवे भोजन में से भाग करके देना समविभाग है ।

इस व्रत का पालन करने वाला व्रतियों को दिये जाने योग्य आहार, जल, औषधि को हरे पत्तों जैसे कमल पत्र आदि सचित पदार्थों से नहीं ढांकता । हरे पत्र आदिक पर रखा हुआ भोजन, जल, औषधि आदि उनको दान में नहीं देता । दान को आदर भाव से देता है । अनादर या अविनय से नहीं देता । देने योग्य पदार्थ या दान की विधि को भूलता नहीं, किसी दूसरे दातार से ईर्ष्या करके दान नहीं देता ।

तीन गुणवृतों और चार शिक्षा वृत को मिलाकर सप्तशील कहलाते हैं । ये पंच अणुव्रतों की रक्षा और वृद्धि करने वाले हैं ।

श्रावक को इन बारह व्रतों के अतिरिक्त छह दैनिक कर्म भी नित्य प्रति करते रहना चाहिये । इन दैनिक षट् कर्मों को श्रावक के षट् आवश्यक कर्म भी कहते हैं—षट् कर्म के नाम हैं—देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ।

सल्लेखना—श्रावक का यह भी धर्म है कि अन्त समय में, जब मृत्यु का निश्चय हो जावे तो धर्म ध्यान के साथ प्राणों का त्याग करे। इसको सन्यास मरण समाधि मरण या सल्लेखना कहते हैं। आहिस्ता २ सब प्रकार की क्रियाओं और चिन्ताओं को छोड़कर तथा क्रमशः सब खाने-पीने का त्याग कर आत्म ध्यान में लीन हो समता भाव पूर्वक प्राणों का त्याग करना ही श्रेष्ठ मरण है। इस सन्यास मरण या सल्लेखना को धारण करने वाला श्रावक सल्लेखना धारण करने के बाद अब आगे अधिक जीने की इच्छा नहीं करता, अपने मित्रों में अनुराग नहीं रखता और न उनको याद करता है। पहले भोगे हुए भोगों का चिन्तवन नहीं करता और न ही आगामी भोगों के मिलने की वांछा करता है।

चरित्र की अपेक्षा देशव्रती श्रावक के ११ दर्जे हैं जो ग्यारह प्रतिमाएँ कहलाती हैं। उन्नति करते हुए एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी आदि ग्यारह प्रतिमा तक चढ़ना होता है और उनमें भी ऊपर जाकर साधु होता है। आगे-आगे की प्रतिमाओं में पहले २ की प्रतिमाओं की क्रिया का होना भी जरूरी है।

(१) दर्शन प्रतिमा——सम्यक् दर्शन में २५ दोष नहीं लगाता, अष्ट मूल गुण का निरतिचार पालन

करता है, सप्त व्यसन का त्यागी होता है। देव शास्त्र गुरु का दृढ़ श्रद्धानी होता है। अन्याय नहीं करता, दयालु होता है।

(२) व्रत प्रतिमा—श्रावक के पंच अणुव्रत तथा ३ गुणव्रत और ४ शिक्षा व्रतों का तथा कुल बारह व्रतों का निरतिचार पालन करता है।

(३) सामायिक प्रतिमा- व्रती श्रावक सवेरे, दोपहर और शाम को नियत समय के लिए नियम पूर्वक सामायिक करता है।

(४) प्रोषध प्रतिमा—महीने के चारों पर्वों में अर्थात् प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को १६ पहर उपवास करना।

(५) सचित त्याग प्रतिमा—इस प्रतिमा का धारी हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे फल फूल बीज आदिक नहीं खाता—प्रासुक आहार और जल को ग्रहण करता है।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—रात्रि के समय कृत, कारित, अनुमोदना रूप से सर्व प्रकार के आहार का त्याग करना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—अपनी पराई किसी भी प्रकार की स्त्री से भोग नहीं करना, अखण्ड निर्दोष ब्रह्मचर्य पालना।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा– गृहस्थ सम्बन्धी सर्व प्रकार की क्रिया तथा आरम्भ का परित्याग करना, सन्तोष धारण करना।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा सब प्रकार के बाह्य परिग्रह से समता को त्याग कर सन्तोष धारण करना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—किसी प्रकार के भी गृह सम्बन्धी, संसारी कार्यों में सलाह मशवरा नहीं देना। लाभ, अलाभ, हानि, वृद्धि, दुःख-सुख आदि समस्त कार्यों में हर्ष विषाद करके अनुमोदना नहीं करना, जो कोई भोजन को बुलावे उसके यहां भोजन कर आना—ऐसे नहीं कहना कि अमुक भोजन हमारे लिए बनाओ, जो कुछ श्रावक जिमावे सो जीम लेना।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा– गृहस्थ से उदासीन होकर घर छोड़ वन, मठ आदि में तपश्चरण करते हुए रहना, भिक्षा वृति से भोजन करना और खण्ड वस्त्र धारण करना। इस प्रतिमा धारी के दो भेद हैं—क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक अपनी डाढी आदि के केश उस्तरे, कैंची आदि से कटवाते हैं, लंगोटी और खंड वस्त्र रखते हैं, बैठकर अपने हाथ में या किसी बर्तन में भोजन करते हैं, ऐलक जो क्षुल्लक से ऊँचे

दर्जे के होते हैं केश लौंच करते हैं । केवल लंगोटी रखते हैं । मुनि की तरह हाथ में पीछी रखते हैं और अपने हाथ में ही भोजन करते हैं किसी बर्तन में नहीं करते ।

जो भव्य जीव मुनि धर्म को पालन करने के लिए असमर्थ है, उन्हें चाहिए कि यथाशक्ति गृहस्थ धर्म का निर्दोष पालन करें और अपने जीवन को सफल बनावें ।

वास्तव में चारित्र ही धर्म है जो समता भाव है उसको ही धर्म कहा गया है, राग, द्वेष मोह रहित जो आत्मा का परिणाम है, वही समभाव है और वही चारित्र है, जो सम्यक् चरित्र की आराधना करते हैं वे धन्य हैं जो कि पापों को जीतते हैं, ध्यान रूढ़ होते हैं सम्यक् चारित्रवान की पूजा इन्द्रादि देव भी करते हैं जो चरित्रविहीन है, उनकी इस लोक में निन्दा हुआ करती है, उनका परलोक भी कभी नहीं सुधरता । धन्य हैं वे महात्मा जिन्होंने राग द्वेष परिणामों को विडार दिया है जो समस्त परिग्रह का त्यागकर व्रतों में दृढ़ हो निर्मल चित्त से तपश्चरण करते हैं, वे ही सच्चे धीर हैं, वे ही वैराग्यवान है, वे मोक्ष सुख की भावना रखते हैं, सब परिग्रह से

मुक्त है, वे ही धन्य हैं।

ऐसे चरित्र की महिमा को भली भांति समझ धर्म का आचरण करना ही श्रेष्ठ है। धर्म का आचरण करो, मृतक समान मत बनो, जिन महानुभावों के चित्त में सच्चा धर्म बसा है उन ही का जीवन सफल है। जो धर्माचरण करने वाले हैं वे मरने पर भी अमर हैं और जो पाप के मार्ग में चलने वाले हैं वे जीते हुए भी मृतक समान है।

प्रश्नावली

१ विकल चारित्र किसे कहते है ?

२. अणुव्रत किसे कहते है, अणुव्रत कितने है ? उनके नाम बताओ और उनमे से प्रत्येक की व्याख्या अपने सरल शब्दो मे करो।

३. क्या अणुव्रती श्रावक नीचे लिखी बाते करेगा ?

(अ) ऊट या घोडे पर शक्ति से अधिक बोझा लादना।

(आ) दूसरो के दोष प्रकट करना।

(इ) गणिका का नाच देखना।

(उ) बहुत वस्तुओं का सग्रह करना।

४. गुणव्रत किसे कहते है ? ये कितने है, उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ।

५. इनको गुणव्रत क्यो कहते है ?

६. शिक्षाव्रत से क्या समझते हो, ये कितने होते हैं ? प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

७. अनर्थ दण्ड विरति और सामायिक व्रत का स्वरूप समझाओ ।

८. भोग और भोगोपभोग के पदार्थो से तुम क्या समझते हो ।

९ सल्लेखना से क्या समझते हो ? सल्लेखना व्रत कैसे पाला जाता है ?

१०. प्रतिमा से क्या समझते हो, प्रतिमाएं कितनी होती है ?

११. क्षुल्लक और ऐलक किसे कहते है ?

१२. सम्यक् चारित्र की महिमा अपने शब्दो मे वर्णन करो ।

लव कुश

(प. राजेन्द्रकुमार जैन कुमरेश)

सावन का महीना था, चारों ओर प्रमाद बरस रहा था, स्त्रियों के मधुरगीत स्वर हृदय में गुदगुदी पैदा कर रहे थे सर्वत्र हिंडोले के दृश्य बड़े कमनीय मालूम होते थे। बच्चों से लेकर बड़े बूढ़े सभी के

अन्तर में सावन अपना अनुराग बखेर रहा था। ये सभी सावन की प्रणय कल्लोलों में लवलीन और अलमस्त थे।

सीता के भी इसी समय नौ मास गर्भ के पूर्ण हो गये। उसने इन्हीं प्रमोद भरे दिनों में अपनी पुण्यमय कुक्षि से दो पुत्र प्रसव किये। पुर में और अधिक आनन्द मनाया जाने लगा। स्थान-स्थान पर रोशन चौकियां, शहनाइयां बजने लगीं, प्रजाजन कुमारों की जय कामना करने लगे, वे दोनों कुमार भाग्यशाली तथा अनुपम तेज-पूर्ण थे।

धीरे धीरे समय निकलने लगा। सीता अपने युगल बालकों की बाल लीला में अपने पति वियोग को भूल गईं, वह अपना परित्याग भूल गईं वह भयानक अरन्य। सारा परिवार इनकी बाल लीला से प्रमुदित, वे दोनों भाई दोज के चन्द्रमा से दिनोंदिन बढ़ने लगे मामा वज्रजंघ ने इनके पढ़ने की व्यवस्था करदी और फिर कुछ समय के बाद वे दोनों भाई पढ़कर विद्वान हो गए।

अब इनके योवन के दिन थे। धीरे २ उनकी सुप्त कामनाएँ जाग रही थीं, शरीर में नवीन स्पंदन होने लगा था और मन नवीन कल्पनाओं की सृष्टि में उलझने लगा था एक दिन विचार होते ही वन क्रीड़ा के लिए मामा वज्रजंघ से आज्ञा ले वन की ओर चल

पड़ें।

अरन्य की सुन्दरता में ये अपनी सुन्दरता से मधुर रस बखेर रहे थे और उसके सौन्दर्य की कर रहे थे लूट। चारों ओर मधुमास का बिखरा लावण्य इन्हें उत्साहित कर रहा था। वे अपनी लीलाओं पर अपने आप मुग्ध थे। बहुत कुछ खेल कूद कर वे एक सघन लता कुंज में कुछ देर आराम करने के लिए बैठ गए। उनका बैठना ही था कि उधर आते हुए महाराज नारद मुनि पर उनकी दृष्टि पड़ी - वे उठ खड़े हुवे। दोनों ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। "राम लक्ष्मण की तरह तुम्हारा यश विश्व में व्याप्त हो" नारद ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

'राम लक्ष्मण कौन हैं महाराज !' उन्होंने उत्सुकता से पूछा।

'क्या तुम नहीं जानते कुमार !'

'नहीं तो देव ! हम नहीं जानते, क्या आप बता सकेंगे वे कौन हैं !' नम्रता से कुमार ने पूछा।

'हां क्यों नहीं बताऊंगा कुमार !' नारद ने सारा हाल कुमारों को कह सुनाया, वे बोले—'तुम्हारी माँ का परित्याग राम ने केवल अपवाद से ही कर दिया था।'

'केवल अपवाद से !'

'हां।'

'बिना परीक्षा लिए !'

'हां।'

इस प्रकार नारद का उत्तर सुनते ही कुमार क्रोधित हो उठे, नेत्र लाल हो गए, उन्होंने होंठ चबाकर कहा—'अच्छा हम भी देखेंगे वे कितने बहादुर हैं, हमारी मां का अपमान!' वे उसी समय उठ कर नगर की ओर चल पड़े, उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि हम अपनी मां के अपमान का बदला उनसे अवश्य लेंगे चाहे कुछ भी क्यों न हो।

प्रश्नावली

१. लव कुश कौन थे?
२. इनका जन्म कहां हुआ?
३. इनका पालन पोषण किसने किया?
४. लव कुश और नारद का क्या वार्तालाप हुआ?
५. नारद कौन होता है?

राम, लक्ष्मण और लव कुश का युद्ध

दि० जैन कथांक परिन्यकना से

(ले० पं० राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश')

सीता बैठी हुई कुछ सोच रही थी, पास ही उनकी भाभियां हंसी मजाक कर रहीं थीं, कुमार सीधे वहाँ जा पहुंचे और जरा क्रोध भरे स्वर में बोले 'माँ! क्या राम ने तुम्हारा अपमान किया है?'

'नहीं तो' सीता ने व्यथित स्वर में कहा।

'क्यों उन्होंने तुम्हारा परित्याग नहीं किया।'

'हाँ' सीता के मुंह से निकल गया।

'तो हम उनसे इस अपमान का बदला अवश्य लेंगे मां।'

'नहीं बेटा, यह क्या कर रहे हो! इसमें मेरा अपमान ही क्या है।' 'रहने दो माँ! हम समझ गए तुम हमें युद्ध से रोकना चाहती हो, लेकिन अब हम अवश्य ही उनसे बदला लेकर रहेंगे, चाहे कुछ हो।'

वे यह कहकर बाहर चले गए।

मामा से उन्होंने सारा हाल कह सुनाया, युद्ध निश्चय हो गया, कुमार बदला लेने के लिए प्रति क्षण व्यग्र हो रहे थे।

सरयू के किनारे दोनों ओर की सेनायें आ डटीं, युद्ध प्रारम्भ हो गया। मारकाट, खून खच्चर होने लगा, लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं, दोनों ओर के अधिनायकों के शस्त्र बेकार हो रहे थे, किसी का वार किसी पर भी नहीं चलता था।

लक्ष्मण युद्ध करते २ थक सा गया। राम विचार सागर में गोते लगाने लगे। हम बलभद्र नारायण नहीं हैं शायद ये ही हों, इसीलिए तो हमारा वार काम नहीं देता।' वे कांप गये।

लक्ष्मण ने अन्तिम अस्त्र चक्र चलाना चाहा,

उसने उसे हाथ में उठा लिया, वह चलाना ही चाहता था कि—

'ठहरो' किसी के मधुर स्वर उसके कान में पड़े। उसने आँख उठाकर देखा । सामने से नारद महाराज आ रहे थे। लक्ष्मण ने प्रणाम किया और व्यथित स्वर में बोले—'देव ! आज शस्त्र काम नहीं करते, क्या बात है, मैं तो बड़ा परेशान हूँ ।'

'हाँ लक्ष्मण जी, आज शस्त्र काम नहीं देंगे ।'

'क्यों ? जानते हो ये कौन हैं ? जिनसे तुम युद्ध कर रहे हो ।

'नहीं ।'

'यह तुम्हारे भतीजे, राम के पुत्र लव कुश हैं समझे !' नारद ने आंख मारते हुवे कहा ।

लव-कुश मेरे पुत्र ? राम ने शस्त्र फेंक दिये । हर्षाकुल होकर पुत्रों की ओर दौड़े, युद्ध बन्द हो गया ।

सीता विमान में बैठी हुई पुत्रों की वीरता देख रही थी। वह उनके कौशल पर मुग्ध थी। राम को पुत्रों की ओर आते देखकर अपने स्थान पर चली गई। जब लव और कुश ने देखा कि राम उन्हीं की ओर आ रहे हैं तो उन्होंने भी शस्त्र छोड़ दिये और दौड़ कर पिता के चरणों में गिर पड़े। राम ने उठा कर

उन्हें हृदय से लगा लिया। उनकी आँखों से दो बूंद आंसू ढलकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा। दोनों दल मिलकर एक हो गये, तब बड़े प्रेम से राजपुत्रों को राजधानी ले चले। पुत्रों की खुशी में दरबार लगा महाराज राम ने बड़े आदर से अपने पास बैठाया।

लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, बज्रजंघ आदि सब अपने-अपने स्थान पर बैठ गये, उन सब की एक ही इच्छा थी सीता को बुलाने के लिये महाराज से आज्ञा प्राप्त करना, सब का इशारा पाकर सुग्रीव ने आकर कहा, महाराज ! अब भी महारानी सीता को बुलाना उचित है।

सुग्रीव ! मुझे सीता पर पहले कोई सन्देह नहीं था परन्तु जिस कारण उसका परित्याग किया था, वह कारण आज भी सामने है, अगर किसी उपाय से उसकी पवित्रता प्रकट हो जावे तब ही उसका यहां आना उचित होगा।

यह तो आपके ऊपर निर्भर है, महाराज चाहें तो उनकी परीक्षा ले सकते हैं।

परीक्षा, यह ठीक है, तब तुम सीता को यहाँ ले आ सकते हो।

जो आज्ञा देव ? सुग्रीव उसी समय परित्यक्ता सीता को लेने गये, दरबार बरखास्त हो गया।

आज सीता की परीक्षा है, नगर के समस्त नर नारी उस बड़े से अग्निकुंड के समीप एकत्रित होने लगे, अग्नि कुंड की प्रज्वलित लपटों को देख कर सभी का हृदय कांप रहा था, बच्चे रो रहे थे और युवतियां भयभीत।

यहां राम लक्ष्मण सभी व्याकुल प्रतीत होते थे, परन्तु सीता बड़ी शान्त और धैर्य से प्रभु का ध्यान कर रही थी, उसके हृदय पर तनिक भी भय या मलीनता की रेखा न थी। सीता ध्यान समाप्त कर खड़ी हो गई, आप अग्नि को देख कर बोली 'अग्नि देव ! यदि मैंने रामचन्द्र जी के सिवाय, सोते जागते, उठते-बैठते, मन से, वचन से, किसी अन्य पुरुष से पति भाव किया हो तो मेरे इस अधम शरीर को भस्म कर दो' ऐसा कह कर हंसते-हंसते अग्नि कुंड में कूद पड़ी, सब लोग वेदना से चीख उठे, परन्तु एक ही क्षण में उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अग्निकुंड की जगह निर्मल जल परिपूर्ण सुन्दर सरोवर और कमल सिंहासन पर सीता बैठी हुई है, चारों ओर आकाश से सीता की जय ध्वनि गूंज उठी।

और क्या किया ?

अब सीता की पवित्रता में किसी को सन्देह न रहा था, रामचन्द्र भी प्रेम से सीता के पास आ पहुँचे और स्नेह भरे स्वर में बोले—'सीते ! आप साक्षात् देवी हैं, आपका परित्याग कर वास्तव में मैंने बड़ी भूल की थी ।'

'नहीं नाथ ! आप क्या कह रहे हैं' सीता ने बात काटकर कहा—'यह आपकी भूल न थी, यह था मेरे किसी पूर्वोपार्जित कर्म का परिणाम ।'

'अब घर चलिये सीते !'

'नहीं देव ! अब यह परित्यक्ता कभी घर न जा सकेगी ।'

'क्यों ?'

इस क्यों का उत्तर सीता ने अपने केशों को लोंच करके दिया। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सब ठगे से रह गये, वह आर्जिका हो गई । परित्यक्ता सीता ने अपने जीवन को सार्थक बनाने का उद्यम उपक्रम कर लिया ।

प्रश्नावली

१. लव-कुश और राम लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करो ।
२. नारद ने राम से क्या कहा ?
३. युद्ध बन्द होने पर लव और कुश को राम कहां ले गये ?
४. सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन करो ।
५. सीता ने अग्नि में प्रवेश करते समय क्या प्रतिज्ञा की थी ।
६. अग्नि परीक्षा के बाद सीता राम के महल में क्यों न आई ।